जिनभाषित

सितम्बर 2001

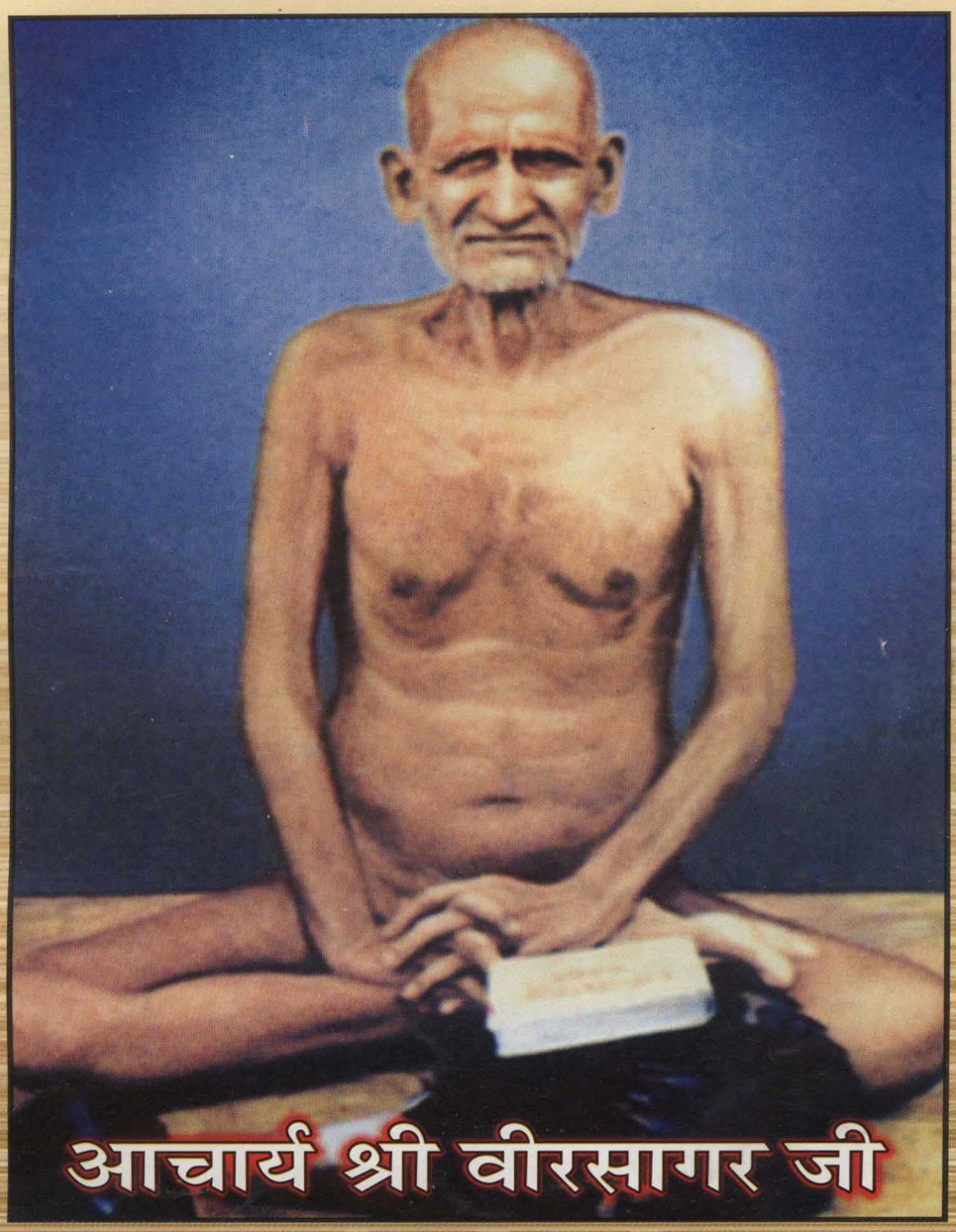

आचार्य श्री वीरसागर जी

दया को सुरक्षित रखिए
आरक्षण को मूलाधिकार बनाने की साजिश

वीर निर्माण सं. 2527 आश्विन, वि.सं. 2058

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC

जिनभाषित

मासिक

सितम्बर 2001

वर्ष 1

अङ्क 4

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
137, आराधना नगर,
भोपाल-462003 म.प्र.
फोन 0755-776666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द लुहाड़िया
पं. रतनलाल बैनाडा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश राणा, जयपुर

◆

द्रव्य-औदार्य
श्री अशोक पाटनी
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-351428,352278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000	रु.
परम संरक्षक	51,000	रु.
संरक्षक	5,000	रु.
आजीवन	500	रु.
वार्षिक	100	रु.
एक प्रति	10	रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।
केवल ड्राफ्ट से

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ विशेष समाचार 1
◆ **सम्पादकीय** : वैराग्य जगाने के अवसरों का मनोरंजनीकरण 2
◆ **प्रवचन** : दया को सुरक्षित रखिए : आचार्य श्री विद्यासागर 5
◆ **लेख** :
● पृथ्वीलोक का अमृत 'दूध' : कु. स्वीटी जैन एवं कु. ऋतु जैन 6
● भवाभिनन्दी मुनि और मुनिनिन्दा : स्व. पं. जुगलकिशोर मुख्तार 8
● नवकोटि विशुद्धि : स्व. पं. मिलापचन्द्र कटारिया 12
● प्रतिष्ठाचार्यों के लिए एक विचारणीय विषय मोक्षकल्याणक स्व. पं. मिलापचन्द्र कटारिया 13
● जैन संस्कृति एवं साहित्य के विकास में कर्नाटक का योगदान : प्रो. डॉ. राजाराम जैन 16
● आर्यिका नवधा भक्ति विवाद नहीं, चर्चा: पं.मूलचन्द्र लुहाड़िया 18
● कर्नाटक की ऐतिहासिक श्राविकाएँ : प्रो. (डॉ.) श्रीमती विद्यावती जैन 19
◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा 14
◆ **व्यंग्य** : **तृष्णाकुल:** शान्तिविहीनलोक: : शिखरचन्द्र जैन 21
◆ **परिचय** :
◆ श्री महावीर उदासीन आश्रम कुण्डलपुर : ब्र. अमरचन्द्र जैन 23
◆ दयोदय पशु संवर्धन केन्द्र तिलवारा घाट जबलपुर : सुबोध जैन 24
◆ देवस्तुति : कविवर बुधजन, अर्थकर्त्ता : ब्र. महेश 25
◆ **कविताएँ**
● निखर उठेगा जीवन कुन्दन : ऋषभ समैया 'जलज' 13
● शहनाई पर गीत कोई : अशोक शर्मा 20
● अगर उठो तो बनो हिमालय : श्रीपाल जैन 'दिवा' 22
● माटी नहीं बनते तुम : आचार्य श्री विद्यासागर 32
◆ **आदर्श कथाएँ** : यशपालन जैन आवरण पृष्ठ 3
◆ **समाचार** 7, 12, 20, 26, 27, 28, 29, 30
◆ **आपके पत्र, धन्यवाद** 31

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष समाचार

अहिंसा प्रेमियों ने 5 ट्रक पशु दयोदय तीर्थ पहुँचाये

सवा सौ गाय-बैलों में अधिकांश जवान : 4 ने दम तोड़ा : 25 गम्भीर

जबलपुर 6 सितम्बर। मूक पशुओं को ट्रकों में भरकर कत्लगाह ले जाये जाने की एक खबर ने आज समीपी कस्बे, पाटन के बाशिन्दों को व्यथित कर दिया। जैन समाज, शिवसेना, विश्व हिन्दू परिषद और बाहुबलि सेवा दल के नेतृत्व में हजारों अहिंसा प्रेमी पाटन से पैदल और वाहनों में तेन्दूखेड़ा मार्ग पर रवाना हो गये, जहाँ से इन पशुओं को लाया जा रहा था। ललितपुर से बरघाट भेजे जा रहे पशुओं से भरे ट्रकों को घेर लिया गया और बाद में इन्हें तिलवारा घाट स्थित दयोदय तीर्थ लाया गया। यहाँ पहुँचते-पहुँचते सवा सौ में से 4 पशुओं ने जहाँ दम तोड़ दिया वहीं 25 गंभीर रूप से बीमार हैं।

पाँच ट्रकों में भरे सौ पशुओं में अधिकतर गायें और शेष बैल हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दयोदय तीर्थ में इलाज कर रहे चिकित्सक डॉ. अकलंक जैन के मुताबिक इनमें से अधिकांश जवान हैं और सभी पशु 48 घंटों से भूखे प्यासे हैं। इन्हें स्वस्थ होने में कम-से-कम दो सप्ताह लगेंगे। प्राप्त जानकारी के अनुसार तेन्दूखेड़ा निवासी सर्वेश जैन ने पाँच ट्रकों में गाय-बैल भरे देखे, ये ट्रक जबलपुर की ओर जा रहे थे। उसे ऐसा लगा कि इन्हें कत्लखाने ले जाया जा रहा है। सर्वेश जैन ने दूरभाष पर यह जानकारी पाटन निवासी यशकुमार जैन को दी और आगाह किया कि पशुओं पर दया की जायें, उन्हें दयोदय गौशाला पहुँचा दिया जाये। यश ने अपने एक मित्र रवीन्द्र जैन के साथ पाटन के प्रतिष्ठित लोगों तथा पुलिस को जानकारी दी और स्वयं कुछ मित्रों के साथ तेन्दूखेड़ा मार्ग पर रवाना हो गये। पाटन से दो कि.मी. दूर गाड़ाघाट में ही पाँचों ट्रकों को रोक लिया गया। ड्राईवर और क्लीनर विरोध पर उतारू हो गये। इसी बीच पाटन में खबर फैली तो जन-मानस उद्वेलित हो उठा। सैकड़ों युवक पैदल ही तेन्दूखेड़ा मार्ग पर चल पड़े। देखते-ही-देखते पाँचों ट्रकों को घेर लिया गया।

प्रत्यक्षदर्शियों के मुताबिक पाटन में जैन समाज के युवकों ने शिवसेना, विहिप और बाहुबलि सेवा दल के सदस्यों तथा पुलिस के सहयोग से ट्रकों को तिलवारा घाट स्थित गौशाला पहुँचाया। जानकार सूत्रों के मुताबिक ट्रक क्रमांक एम.पी. 15 जी-0172, एम.पी. 15 डी-3375, और एम.पी. 15 जी-273, एम.पी. 15 जी-220 और एम.पी. 15 डी-3945 में भरे गाय - बैलों में से दो दर्जन आपस में भिड़कर बुरी तरह जख्मी हो गये। अनेक के सींग टूट गये और कुछ को चोटें आ गयी। हालांकि यह भी कहा जा रहा है कि गाय - बैल उबरा (ग्वालियर) से बरघाट ले जाये जा रहे थे, जहाँ पशु मेले में इन्हें बेचना था। पुलिस ने पाँचों ट्रकों के ड्राइवर-क्लीनर सहित कुल 18 लोगों को बंदी बनाया है, जिनसे पूछताछ की जा रही है। इन लोगों ने तेन्दूखेड़ा में नागरिकों से कहा था कि ट्रकों में कचरा, खाद भरी है। दयोदय तीर्थ में गौशाला समिति के महामंत्री वीरेन्द्र जैन वीरू ने बताया कि सभी पशुओं का उपचार शुरू कर दिया है। डॉ. अकलंक जैन के मुताबिक 4 पशु भोजन - पानी के अभाव में मर गये हैं, जो 25 पशु गंभीर रूप से बीमार और जख्मी हैं, उन्हें ठीक होने में दो सप्ताह का समय लगेगा। डॉ. जैन के मुताबिक यह समझ से परे है कि जवान गाय- बैल कत्लगाह क्यों ले जाये जा रहे थे? उन्होंने पशुओं पर अत्याचार करने वालों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही की माँग की है। पाटन निवासी श्री एस.ओ. श्रीवास्तव के मुताबिक आरोपियों के खिलाफ कृषि पशु परिरक्षण अधिनियम 1959 के तहत कार्यवाही की जा रही है।

सौदागरों ने बछिया को माँ से जुदा किया

मूक पशुओं के सौदागरों ने एक बछिया को उसकी माँ से जुदा कर दिया है। दयोदय पशु संवर्धन एवं पर्यावरण केन्द्र (गौशाला) तिलवाराघाट, पहुँचाये गए पशुओं में शामिल इस बछिया का दर्दभरा रँभाना सुनकर साधु-साध्वी सभी परेशान हैं, लेकिन उनके तमाम प्रयासों के बावजूद उसकी माँ का पता नहीं चल सका है।

ज्ञातव्य हो कि ललितपुर से बरघाट ले जाये जा रहे गाय-बैलों को पाटन के युवाओं ने व्यापारियों से छुड़ाकर दयोदय तीर्थ पहुँचाया था, लगभग सौ पशुओं में से 4 ने कल ही भूख-प्यास से तड़प कर दम तोड़ दिया था, वहीं दो दर्जन गम्भीर रूप से बीमार थे। गौशाला में बीमार पशुओं का इलाज देर रात तक जारी रहा। आज सुबह से ही ब्रह्मचारिणी बहनों ने गाय-बैलों को कान में 'णमोकार मंत्र' सुनाया और उनके जल्द स्वस्थ हो जाने के लिये प्रार्थना की। उल्लेखनीय है कि अब तक यह स्पष्ट नहीं हो सका है कि पशु किसलिये ले जाये जा रहे थे। दयोदय तीर्थ में इन्हें इंजेक्शन लगाये गये और दवायें दी गई, फिर भी 10 गायों की हालत गंभीर बनी हुई है। दयोदय तीर्थ तिलवारा समिति के वीरेन्द्र जैन वीरू ने बताया कि पशुओं में 59 गायें, 1 बछिया, 30 बैल तथा बछड़े-बछिया शामिल हैं। इलाज के दौरान 4 गायों के ऑपरेशन भी किये गये। जानवरों की देखरेख डॉ. अश्विनी दीक्षित, डॉ. एन.के. जैन के अलावा कमलेश कक्का, सतीश नेता, अशोक जैन, दिनेश जैन, राजीव बेटिया आदि कर रहे हैं। संभावना व्यक्त की जा रही है कि तीन दिनों में पशु स्वस्थ होने लगेंगे, पशुओं के इलाज में 15 हजार रूपये की राशि दवा पर खर्च की जा चुकी है।

(दैनिक भास्कर, जबलपुर 8 सितम्बर 2001 से साभार)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

वैराग्य जगाने के अवसरों का मनोरंजनीकरण

कबीर ने कहा है, 'माया बड़ी ठगनी हम जानी।' अर्थात् मिथ्यात्व सबसे बड़ ठग है। वह इन्द्रिय सुख के साधनों को धर्म के वस्त्र पहनाकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों की बुद्धि को भी भ्रमित कर देता है। उन्हें विषयवासनाओं की तृप्ति के साधन भी मोक्ष के साधन प्रतीत होने लगते हैं। भगवान् महावीर के निर्वाण के कुछ ही वर्षों बाद दिगम्बर मुनियों के एक वर्ग को माया ने इस प्रकार ठगा कि उन्हें संयम का साधनभूत दिगम्बरत्व असंयम का कारण मालूम होने लगा और असंयम के कारणभूत वस्त्रपात्र संयम के साधन लगने लगे। फलस्वरूप भगवान् महावीर के नाम से सवस्त्र मुक्ति का प्रतिपादन करने वाला एक सम्प्रदाय ही जैनों में चल पड़ा। आगे चलकर एक भट्टारक सम्प्रदाय का भी दिगम्बर जैन परम्परा में उदय हुआ और माया से विमोहित अनेक दिगम्बर साधु वस्त्रधारण कर मठों में विशाल परिग्रह के साथ राजसी ठाठ-बाट से रहने लगे और केवल पिच्छी-कमण्डलु के बल पर गुरु के सिंहासन पर बैठ गये और मायाविमूढ़ श्रावक उन्हें गुरु मानकर पूजने लगे।

विषयसुख की अनादि वासना से ग्रस्त जीवों की बुद्धि में अधर्म में धर्म की भ्रान्ति पैदा कर देना माया का सबसे बड़ा खेल है। मांसादन-लम्पटियों की बुद्धि में माया ने यह विचार भरा कि देवी-देवता पशुओं की बलि से प्रसन्न होते हैं, अतः उन्हें पशुओं की बलि दो और प्रसाद रूप में उनके मांस का भक्षण करो। इससे मनोकामनाएँ पूरी होंगी। इस प्रकार माया ने पशुबलि और मांसभक्षण में भी धर्म का भ्रम पैदा कर दिया। कौल सम्प्रदाय के अनुयायी तो माया के चंगुल में फँसकर मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन, इन पाँच मकारों के सेवन को ही मोक्षमार्ग मानने लगे। उनके ग्रन्थ कालीतन्त्र में कहा गया है-

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे।।

आधुनिक युग के एक भगवान् ने भी काम लम्पटियों को संभोग के द्वारा समाधि के अनुभव का मार्ग दिखलाया है। और उनके उपदेश का बल पाकर माया ने पौद्गलिक सुख के लम्पटियों को संभोग में भी समाधि का भ्रम पैदा कर दिया।

माया कुछ लोगों के मस्तिष्क में घुसकर असंयमी गृहस्थ को भी सद्गुरु समझने की बुद्धि पैदा कर देती है और सच्चे दिगम्बर मुनियों को झूठा मुनि मानने के लिये उकसाती है।

वर्तमान के कुछ निर्ग्रन्थ मुनियों की बुद्धि को भी माया ने इस प्रकार वंचित किया है कि वे सत्ताधारियों को आशीर्वाद देने के लिये उनके घर जाने को भी मुनिचर्या मानने लगे हैं। टेलीफोन से बात करने को भी मुनिधर्म में शुमार कर लिया है। पंखे, कूलर और एयरकंडीशनर का इस्तेमाल भी उन्हें मूलगुणों में परिगणित प्रतीत होने लगा है। देहसुख की आकांक्षा से ग्रस्त जीवों को माया बुरी तरह ठगती है।

मन्दिरों में फिल्मी संगीत का प्रवेश

वर्तमान में भजनों और पूजाओं की आड़ में फिल्मी संगीतरूपी श्रवणेन्द्रिय-सुख की सामग्री धर्मसाधन-सामग्री का बाना धारण कर मंदिरों में प्रवेश कर चुकी है। अब मंदिरों में पूजा-भक्ति फिल्मी संगीत के साथ ही की जाती है। भजन फिल्मी गीतों की धुनों में ही गाये जाते हैं, क्योंकि वह हमारे विषयासक्त मन को रंजित करता है। संगीत में अद्भुत शक्ति होती है। वह हमें रुला सकता है, हँसा सकता है, हृदय को करुणा से प्लावित कर सकता है, मन में उत्साह भर सकता है, शान्तरस की धारा प्रवाहित कर सकता है, भक्ति-भाव में डुबा सकता है और कामवासना को उद्दीप्त कर सकता है। यह शक्ति संगीत की विशिष्ट राग-रागिनियों में होती है। भक्तिरस में अवगाहन कराने वाले संगीत की राग-रागिनियाँ विशेष प्रकार की होती है। हम देखते हैं कि फिल्मों में कुशल संगीतकार सिचुएशन (दृश्य के स्वरूप) के अनुसार ही धुन बनाता है तथा वाद्य विशेषों का प्रयोग करता है और गीतकार उसी के अनुसार गीत के बोल लिखता है। जहाँ करुणरस पैदा करना होता है वहाँ संगीतकार प्रायः वायलिन के द्वारा करुणोत्पादक ध्वनि पैदा करता है, जहाँ भक्तिरस का वातावरण निर्मित करना होता है वहाँ सितार, मँजीरे आदि वाद्यों के द्वारा पवित्र, सात्विक सुर का सृजन करता है और कोठे पर मुजरे का दृश्य होता है तो कामोत्तेजक धुन और तदनुरूप वाद्यों का प्रयोग करता है। तो मंदिरों में, धार्मिक उत्सवों में, पूजा और भक्ति के प्रसंग में सात्विक संगीत का ही प्रयोग होना चाहिए। द्यानतराय, भूधरदास, बुधजन, दौलतराम, भागचन्द्र आदि जैन गीतकारों ने आसावरी, सारंग, बिलावल, मल्हार, भैरवी आदि शास्त्रीय रागों में अपने भक्तिगीत निबद्ध किये हैं। उन्हें इन्हीं रागों में गाने से भक्ति और वैराग्य का मनोवैज्ञानिक वातावरण निर्मित होता है, श्रोताओं के हृदय भक्तिरस में डूब जाते हैं, वैराग्य से भर जाते हैं।

अब ये पुराने भक्तिगीत किसी भी धार्मिक समारोह में सुनने को नहीं मिलते। अब लोकप्रिय, बाजारू फिल्मी धुनों में ढाले गये नये भजन ही कानों में गूँजते हैं। यहाँ तक कि मुनियों और आर्यिकाओं की धर्मसभा में मंगलाचरण भी फिल्मी धुनों में ही गाया जाता है। फिल्मी धुन चुनते समय यह ध्यान भी नहीं रखा जाता कि वह धुन कैसे गीत के साथ जुड़ी हुई है। फिल्मों में नायक-नायिका अश्लील भाषा और अश्लील मुद्राओं में प्रणय निवेदन करते हुए जो गीत गाते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, उस गीत की अश्लील धुन में भी भक्ति गीत या मुनि-आर्यिकाओं के स्तुतिगीत रचकर गाये जाते हैं।

वर्तमान में, सिद्धचक्र, इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम आदि महापूजाएँ फिल्मी संगीत के माध्यम से ही सम्पन्न की जाती हैं। इसके लिये विशेष प्रबन्ध किया जाने लगा है। प्रतिष्ठाचार्य या विधानाचार्य पेशेवर संगीत पार्टियों को अनुबन्धित कर लेते हैं। उन्हें दस-दस हजार रुपये तक दिलवाये जाते हैं। प्रतिष्ठाचार्यों का प्रतिष्ठाचार्यत्व इन संगीत पार्टियों से ही फलता-फूलता है। संगीत पार्टियों के सभी सदस्य फिल्मी धुनों पर जैनभजन और जैनपूजाएँ गाने में दक्ष होते हैं। उन्हें सिद्धचक्र आदि सभी विधानों की पूजाएँ प्रायः कण्ठस्थ होती हैं और उनमें सभी प्राचीन छन्दों और राग-रागिनियों में निबद्ध पूजाओं को प्रचलित लोकप्रिय फिल्मी धुनों में ढाल लेने की अद्भुत प्रतिभा होती है। ये भक्तामर, महावीराष्टक आदि संस्कृत स्तोत्रों तक के वसंततिलका, शिखरिणी जैसे छन्दों को ताक पर रखकर उन्हें शृंगाररसात्मक फ़िल्मीधुनों में गाने और गवाने का, कुलवधू को बाजारू औरत बना देने जैसा, वीभत्स कार्य करते हैं। ये विधानाचार्यों के लिए बहुत सहायक होते हैं। विधानाचार्य महोदय सामने पोथी खोले बैठे रहते हैं। संगीतपार्टी वाले आधुनिक वाद्ययन्त्रों के तीक्ष्ण संगीत के साथ फिल्मी धुनों में पूजा के पद गाने का काम करते हैं। इन्द्र-इन्द्राणी द्रव्य की रकाबी हाथ में लिए शरीर को हिलाते-डुलाते रहते हैं। पूजा का पद जब पूर्ण होता है तब विधानाचार्य मन्त्र बोलते हुए 'जलं, चन्दनं या अर्घं निर्वपामीति स्वाहा' ऐसा जोर से चिल्लाते हैं। उसे सुनकर इन्द्र-इन्द्राणी भी जोर से 'स्वाहा' ध्वनि का उच्चारण करते हुए द्रव्य चढ़ा देते हैं। विधानाचार्य और इन्द्र-इन्द्राणियों को केवल इतना ही बोलना पड़ता है, बाकी सम्पूर्ण पूजा गाने का काम संगीतपार्टी वाले करते हैं।

संगीतपार्टी वाले प्रायः अजैन होते हैं। सिद्धचक्रादि विधानों में उन्हें चाँदी काटने का अच्छा अवसर मिलता है। उन्हें मालूम होता है कि विधानों में वे लोकप्रिय फिल्मी धुनों में पूजा या भजन गाकर लोगों का मनोरंजन करने के लिये बुलाये जाते हैं, ताकि विधान में श्रोताओं या दर्शकों की अधिक से अधिक भीड इकट्ठी हो और दो-तीन घंटों तक वहाँ जमी रहे, क्योंकि यह विधान की सफलता का लक्षण है। इसलिये वे पूजा के बीच-बीच में फिल्मी धुनों पर बनाये गये नये-नये धार्मिक गीत छेड़ देते हैं और इन्द्र-इन्द्राणियों को उन धुनों पर नृत्य करने के लिये प्रेरित करते हैं। इन्द्र-इन्द्राणी भी भक्ति के नाम पर अपने स्थूल शरीर का ख्याल किये बिना नृत्य करने लगते है और पाँच-दस मिनट के लिए फिल्मी संगीत की लय पर किये जाने वाले नृत्य का मनोरंजक दृश्य उपस्थित हो जाता है। फिल्मी संगीत पर मुग्ध होने वाले रसिक श्रोता और दर्शक तन्मय हो जाते हैं। संगीत समाप्त होने पर नृत्य करने वालों के रिश्तेदार उनपर रुपये निछावर कर संगीतपार्टी को दान कर देते हैं। इस प्रकार संगीत पार्टी को दुहरी कमाई होती है। इस लालच से वे पूजा को बीच में बार-बार रोककर नृत्य कराने वाले गीत छेड़ते रहते हैं। इससे सारा कार्यक्रम मनोरंजक बन जाता है।

इस फिल्मी संगीत और नृत्य के आकर्षण से जो भीड़ इकट्ठी होती है और भीड़ का जो मनोरंजन होता है उसे दृष्टि में रखकर ही तारीफ करने वाले कहते हैं कि अमुक-अमुक विधान में आनन्द की वर्षा हो रही है, धर्म की बहुत प्रभावना हो रही है। वस्तुतः यह धर्म की प्रभावना नहीं, फिल्मी संगीत की प्रभावना है। यदि विश्वास न हो तो एक बार बिना संगीत पार्टी के कोई विधान कराके देख लीजिए। श्रोताओं या दर्शकों के लाले पड़ जायेंगे। सम्पूर्ण कार्यक्रम में विधानाचार्य, इन्द्र-इन्द्राणियों, माली और दो-चार बूढ़े स्त्री-पुरुषों के अलावा एक भी नवयुवक-नवयुवती वहाँ दिख जाये तो कहियेगा। विधानों की पूजा लम्बी होती है और उनकी लय पुराने छन्दों में होती है। इसलिए पूजा के पदों को सुनना मनोरंजक नहीं होता। ऐसे अमनोरंजक कर्मकाण्ड में केवल इने-गिने अतिश्रद्धालु लोग ही अधिक देर तक बैठ सकते हैं। इतनी लम्बी बैठक साधारण श्रद्धावाले लोगों के वश की बात नहीं।

विधानाचार्य इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को भलीभाँति जानते हैं। इसीलिए वे फिल्मी संगीत का मसाला डालकर विधान के कार्यक्रम को मनोरंजक बनाने की कोशिश करते हैं। और ऐसा करने पर जो भीड़ जमा होती है वह स्पष्टतः श्रवणेन्द्रिय के विषयसुख का आस्वादन करने के लिय जमा होती है, पूजा या विधान में चित्त लगाने के लिय नहीं, किन्तु विधानाचार्य प्रचारित करते हैं कि उनमें धर्म के प्रति रुचि बढ़ रही है। वस्तुतः यहाँ भी हम माया से ठगाये जा रहे हैं। उसके वशीभूत हो श्रवणेन्द्रिय सुख के उपाय को धर्मरुचि जगाने का उपाय समझा जा रहा है। अफसोस है कि हमने पूजा-भक्ति के पवित्र अनुष्ठानों को बाजारू संगीत की शहद में डुबाकर कोरे मनोरंजन का साधन बना लिया है और उन्हें वास्तविक उद्देश्य से भटका दिया है। पूजा-भक्ति का वास्तविक उद्देश्य है भगवान् के गुणस्तवन से आत्मा को पवित्र करना, विषयानुराग और कषायों के मैल को धोना, जैसा कि आचार्य समन्तभद्र ने कहा है-

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः।।

किन्तु पूजा-भक्ति के अनुष्ठानों का मनोरंजनीकरण हमारे विषयानुराग को ही पुष्ट करता है।

इतना ही नहीं हम चातुर्मास स्थापना, दीक्षा दिवस और पिच्छी परिवर्तन जैसे वैराग्य-प्रबोधन के अवसरों का भी मनोरंजनीकरण करने से नहीं चूकते। उन्हें भी हम फिल्मी संगीत में पिरोये हुए गीत-नृत्यादि के विविध कार्यक्रमों का आयोजन कर 'स्टेज शो' और 'वेरायटी शो' में बदल देते हैं। चातुर्मास हेतु धन इकट्ठा करने के लिये बोलियाँ लगाई जाती हैं। उनमें लोगों को अधिक से अधिक बोली लगाने के लिये प्रेरणा देने हेतु अनेक श्लोक, दोहे, सूक्तियाँ आदि सुनाई जाती हैं, जिनमें धन की निस्सारता, नश्वरता और उसे सार्थक बनाने के उपायों का वर्णन होता है। यह बहुत उपयोगी है। किन्तु आजकल इसकी जगह फिल्मी गानों की भद्दी पैरोडियाँ बनाकर सुनाने का प्रचलन हो गया है, जैसे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- **'ले जायँगे, ले जायँगे, दिलवाले बोलियाँ ले जायेंगे।'**
- **'हाथ से बोली जब छूट जाती है, तो एक दो तीन हो जाती है।'**
- **'चुप-चुप खड़े हो जरूर कोई बात है, तिजोड़ी की चाबी सेठानी जे के पास है।'**

ये भद्दी पैरोडियाँ वैराग्यप्रबोधन के दुर्लभ अवसरों की गरिमा का गला घोंट देती हैं, उसे निम्नस्तरीय 'कामेडी शो' में परिवर्तित कर देती हैं।

फिल्मी धुनों का मनोविज्ञान

यहाँ पूजाभक्ति आदि के कार्यक्रमों में संगीत-नृत्य के प्रयोग का निषेध नहीं किया जा रहा है। संगीत-नृत्य भी पूजा के अंग हैं। तिलोयपण्णत्ति में लिखा है कि आष्टाह्निक पर्व में देव नन्दीश्वर द्वीप जाते हैं और संगीतनृत्य के साथ जिनप्रतिमाओं की पूजा करते हैं। यहाँ भजन-पूजन में सिर्फ फिल्मी संगीत के प्रयोग का निषेध किया जा रहा है। इसका बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण है। मनोविज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है Law of association अर्थात् साहचर्य का नियम। जिन दो पदार्थों को हम परस्पर सम्बद्ध अवस्था में बार-बार देखते, सुनते और अनुभव करते हैं, वे स्मृतिपटल में परस्पर सम्बद्धरूप में ही अंकित हो जाते हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि जब उन दो पदार्थों में से कोई एक पदार्थ देखने-सुनने में आता है, तब वह दूसरे पदार्थ की स्मृति जगा देता है। जैसे हम राम और श्याम, दो मित्रों को कई दिनों तक साथ-साथ देखें और उसके बाद कभी राम को अकेला देखें, तो हमें फौरन श्याम की याद आ जायेगी और हम उससे पूछ उठेंगे - 'आज अकेले कैसे? श्याम कहाँ है? यही साहचर्य का मनोवैज्ञानिक निमय फिल्मी धुनों में काम करता है। जो फिल्मी गीत जिस फिल्मी धुन के साथ हमारे कानों में बार-बार गूँजता है, वह गीत उस धुन के साथ ही हमारे मानस पटल पर अंकित हो जाता है। फलस्वरूप जब वह धुन हमारे कानों में पड़ती है तब उस गीत के बोल अपने आप हमारे स्मृतिपटल पर उभर आते हैं। भले ही उस धुन में धार्मिक गीत के नये बोल फिट कर दिये जायँ और उनके साथ वह धुन बजायी जाय, तो भी साहचर्यनियम के कारण उस धुन से जुड़े मौलिक फिल्मीगीत के बोल याद आ जाते हैं। न केवल गीत के बोल, बल्कि फिल्म की वह सिचुएशन (भावभूमि) और वे नायक-नायिका और उनके वे सारे शृंगारिक या अश्लील हाव-भाव जिन पर वह फिल्माया गया है, स्मृतिफलक पर नाचने लगते हैं और उतने समय के लिये श्रोताओं का उपयोग (चित्तवृत्ति) विषयराग में रँग जाता है। कितने अश्लील फिल्मी गीतों की धुनों पर धार्मिक गीत रचे जा रहे हैं और मंदिरों में गाये जा रहे हैं यह बतलाने में शर्म आती है। इस कार्य में तो हमने फिल्मों की मर्यादा भी तोड़ दी है। फिल्मों में कम से कम धार्मिक गीत तो सात्विक संगीत में ही गूँथे जाते हैं, जैसे 'तोरा मन दर्पन बन जाये', या 'हमको मन की शक्ति देना' आदि। किन्तु हम अपने धार्मिक गीत उन फिल्मी गीतों की धुनों पर भी बनाते हैं, जिनके बोल अत्यन्त अश्लील, फूहड़ और भद्दे हैं तथा जो बेहद कामुक दृश्यों पर फिल्माये गये हैं।

बताशे में कड़वी दवा देने का तर्क

कुछ प्रगतिशील श्रावक भजन-पूजन में फिल्मी संगीत के प्रयोग का औचित्य सिद्ध करने के लिये तर्क देते हैं कि जैसे रोगी को रोगमुक्त करने के लिए बताशे में रखकर कड़वी दवा दी जाती है, वैसे ही आधुनिक बालक-बालिकाओं और युवक-युवतियों को धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिय फिल्मी संगीत का सहारा लेना उचित है।

बताशे की बात मुझे मान्य है, लेकिन फिल्मी संगीत बताशा नहीं है, मदिरा है। बताशे में रखकर कड़वी दवा दी जाय, किन्तु उसे मदिरा की बूँदों में घोलकर पिलाना श्रेयस्कर नहीं है।

दूसरी बात यह है कि मन्दिरों, होटलों और सिनेमाघरों में फर्क होता है। मन्दिरों से चन्दन और धूप की ही सुगन्ध चारों ओर फैलनी चाहिए, बाजारू सेन्ट की नहीं। वैसे ही देवालयों से शास्त्रीय संगीत, भक्तिसंगीत की ही स्वर लहरी निकलनी चाहिए, अश्लीलता के साथ जुड़े फिल्मी संगीत की नहीं।

फिल्मी संगीत की शिक्षा सिनेमाघरों से मिल जाती है, मन्दिरों से भी उसी संगीत की शिक्षा मिले तो सिनेमा घरों और मन्दिरों में क्या फर्क रहेगा? मन्दिर तो सुसंस्कारारोपण की पाठशालाएँ हैं। वहाँ सात्विक शास्त्रीय संगीत और साहित्यिक छन्दों के अभ्यास की ही प्रेरणा मिलनी चाहिए। यदि मन्दिरों से भी शास्त्रीय छन्दों और शास्त्रीय संगीत का प्रयोग लुप्त हो गया तो हमारी परम्परागत संस्कृति का लोप हो जायेगा।

जैन संस्कृति के नाम पर फिल्मी संगीत और फिल्मी नृत्य

जैन मन्दिरों और उत्सवों में फिल्मी संगीत के माध्यम से ही भजन-पूजन के सारे कार्य सम्पन्न होते हैं। इससे ऐसा लगता है जैसे फिल्मी संगीत और फिल्मी नृत्य ही जैन संस्कृति के अंग हैं। इसी कारण जब राष्ट्रीय स्तर पर जैन बालक-बालिकाओं को कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करना होता है तब वे मंच पर फिल्मी संगीत और नृत्य के ही नमूने पेश करते हैं, जिससे पता चलता है कि सांस्कृतिक दृष्टि से हम कितने हीन हैं।

'जिनभाषित' के गतांक में श्री कुमार अनेकान्त का एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें उन्होंने बतलाया है कि भगवान् महावीर की 2600वीं जन्म जयन्ती पर इण्डोर स्टेडियम नई दिल्ली में जो महोत्सव आयोजित हुआ था उसमें जैन बालाओं ने 'मैंने पायल जो छमकायी, फिर भी आया न हरजाई' वाले बेहूदे गीत की धुन पर धार्मिक नृत्य किया था। यह सम्पूर्ण जैन समाज के सिर को शर्म से झुका देने वाली घटना है।

इस विषय में हमें गंभीरता से विचार करना होगा और तय करना होगा कि क्या इस विकृति को फलने-फूलने देना है या इस पर यहीं विराम लगाना है?

रतनचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दया को सुरक्षित रखिये

तिलवारा घाट, जबलपुर म.प्र. में रविवारीय प्रवचन का अंश

आचार्य श्री विद्यासागर

दया को सुरक्षित रखिये क्योंकि यही धर्म का मूल है। दया है तो मोक्षमार्ग है, हम दया के बिना चलते हैं तो वह मोक्षमार्ग नहीं, वह तो मोह मार्ग है। विषय सामग्री को देखोगे तो विषयी ही बनोगे, लेकिन दया की बात सुनोगे तो दया धर्म को पाओगे। आज भारत की दशा दया-धर्म के बिना क्या हो रही है? सुनने में आ रहा है, अब तो ट्रेनों में भर-भरकर पशुओं को बंगाल, हैदराबाद आदि की ओर भेजा जा रहा है। आज एक दिन में एक-एक कत्लखाने में 10-10 हजार पशुओं को काटा जा रहा हैं। क्या यह वही भारत है जिसने अहिंसा धर्म के माध्यम से आजादी पाई और 'जियो और जीने दो' की बात सिखाई? आज उसी भारत - भूमि पर हिंसा का तांडव, यह तो बड़े शर्म की बात है।

दया धर्म के क्षेत्र में हमारे पूर्वजों ने जो योगदान दिया हम उनके इतिहास को भूलते जा रहे हैं, और हिंसा के कार्यों का समर्थन करते जा रहे हैं। आज तो 'अंधेर नगरी चौपट राजा' की बात को चरितार्थ किया जा रहा है और किसी की बात को नहीं सुना जा रहा है। हम अपना समर्थन हिंसा के कार्य करने में न दें। हम अपना वोट दे रहे हैं, वह वोट अहिंसा के क्षेत्र में कार्य करने वाले को दें। अहिंसा की रक्षा करना पुरुषों का ही काम है ऐसा नहीं है महिलाओं को भी आगे आकर अपना कार्य करना चाहिए। दक्षिण भारत के इतिहास में एक रानी शान्तला हुई, उसने अपने राज्य की रक्षा के साथ अहिंसा धर्म की भी रक्षा कर अपना अनोखा योगदान दिया था। यह हमारी भारतीय नारियों का इतिहास है जिन्होंने अपने अहिंसा धर्म से समझौता नहीं किया। आज भारत की इस धरती पर हिंसा का तांडव हो रहा है, हिंसा का यज्ञ हो रहा है, उसे रोकने की आवश्यकता है। भगवान महावीर स्वामी का यह 2600 वाँ जन्मोत्सव वर्ष हम मना रहे हैं, और अहिंसा की बात हम भूल जायें यह तो ठीक नहीं है। अहिंसा धर्म को अब केवल जयकार तक ही सीमित नहीं रखें, उसकी रक्षा के लिये प्रत्येक व्यक्ति को आगे आना चाहिए।

भगवान नेमिनाथ के विवाह का वह प्रेरक प्रसंग जो संसार का सबसे बड़ा राग का कार्य कहा जाता है वह है श्रावण मास का समय। विवाह के लिये रथ पर आरुढ़ होकर नेमिनाथ भगवान जा रहे हैं, लेकिन एक घटना इस राग के वातावरण को वीतरागता की ओर ले जाती है। वह घटना थी- पशुओं का एक बड़ा समूह एक बाड़े में है। पूछा अपने सारथी से कि इन पशुओं को बंधन में क्यों रखा गया है? सारथी ने कहा - आपकी बारात में आये अतिथियों की भोजन की व्यवस्था के लिये इनको बंधक बनाकर रखा गया हैं। उनका मांस उन्हें खिलाया जायेगा। बस क्या था? मेरे निमित्त इतने सारे जीवों का वध, यह कभी मंजूर नहीं? तुरंत अपने रथ को मोड़ने के लिये अपने सारथी से कहा और राग के बंधन को तोड़कर वीतरागता के मार्ग को अपनाया। आज इस सभा में नेमिनाथ भगवान के इतने सारे उपासक है, उन्हें इस भारत की धरती पर हो रहे पशुओं की चीत्कार नहीं सुनाई दे रही है।

अहिंसा धर्म के क्षेत्र में अकेला ही चलना होता है। इसके लिये प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं होती। आज प्रदर्शन का युग है इसमें अकेले की बात नहीं सुनी जाती। आप लोगों का कर्तव्य है कि अहिंसा का रास्ता चुनें, उस पर चलें। अहिंसा का रास्ता एक ऐसा रास्ता है जिसमें सुख-शांति भरपूर है। आज अशांति का वातावरण क्यों हैं? चारों तरफ हिंसक विचारधारा की भीड़ खड़ी है, इसलिये अशांति का वातावरण बना हुआ है। आज सभी देश अशांति का अनुभव कर रहे हैं। अहिंसा के अभाव में अशांति के अलावा और कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं हैं। अहिंसा का महत्त्व जिसकी समझ में आ जाता है, उसके अंदर एक ताजगी जैसी आ जाती है। मूकमाटी में हमने लिखा- 'एक ताजगी, एकता-जगी।' जहाँ पर एकता जगती है, वहाँ पर एक ताजगी अवश्य होती है। आज एकता की ताजगी के अभाव में अहिंसा की ताजगी, सुगंध इस भारत भूमि पर नहीं फैल पा रही है।

आज वर्तमान में देश की हालत देखता हूँ तो लगता है, क्षत्रियों के द्वारा जो देश का, या अपने राज्य का संचालन होता था वह स्वतंत्र रूप से हुआ करता था। आज देश को स्वतंत्रता मिले 50-55 वर्ष हो गये हैं, स्वर्ण जयंती भी बड़ी धूमधाम से मना ली गई, लेकिन जिसके माध्यम से स्वतंत्रता मिली उसकी बात नहीं सुनी जा रही है। उसकी बात क्यों नहीं कही जा रही है? आज की सत्ता में राजनीति का सही रूप नहीं, व्यवसाय नीति का महत्त्व होता जा रहा है। अर्थ के प्रलोभन में अपनी मूल संस्कृति का ही विनाश होता जा रहा है। जैसे बनिया होता है उसके लिये तो केवल पैसा ही दिखता है, यही दशा आज देश की होती जा रही है। क्षत्रिय जो होता है वही राज्य का संचालन कर सकता है। आज अहिंसा के क्षेत्र में काम करने वालों को सदा आशीर्वाद हैं। युवकों के लिये रचनात्मक कार्य करने के लिये आगे आना चाहिए। मैं एक बात और कहना चाहूँगा कि मुझे खुश करने के लिये काम न करें, मैं इसमें खुश भी नहीं होता। अहिंसा धर्म की रक्षा, प्रचार प्रसार करने वालों से मैं खुश रहता हूँ। आज समाज में करोड़ों रुपये पंचेन्द्रियों के विषय में तो खर्च हो रहे हैं, लेकिन अहिंसा धर्म के क्षेत्र में क्यों इस प्रकार कार्य नहीं हो रहा है? मैं तो भगवान से यही भावना करता हूँ- इन युवाओं में अहिंसा धर्म की भावना बढ़ती जाये, और धर्म की प्रभावना होती जाये। इसी भावना के साथ इन पंक्तियों के साथ विराम लेता हूँ-

यही भावना वीर से, अनुनय से कर जोड़।
हरी भरी दिखती रहे, धरती चारों ओर।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वी लोक का अमृत 'दूध'

कु. स्वीटी जैन एवं कु. ऋतु जैन

डॉ. राजीव अग्निहोत्री का 'क्या आप भी हैं वेजिटेरियन' लेख 'जिनभाषित' (जुलाई-अगस्त 2001) में भी 'दैनिक भास्कर' से उद्धृत किया गया था। उसका प्रयोजन था मांसाहार से होने वाली हानियों को रेखांकित करना और यह सामने लाना कि विश्व के फिल्मी सितारे, राजनेता और खिलाड़ी भी मांसाहार को हानिकर समझते हैं और उसका सेवन नहीं करते। लेख में लेखक ने यह भी लिखा है कि 'कई डाक्टर दुग्धसेवन को भी स्वास्थ्य के लिये उतना ही हानिकारक समझते हैं जितना मांससेवन को। अत: बिल क्लिंटन के स्वास्थ्य सलाहकार डॉ. जॉन मैक्डूगल तो दूध को सीधे 'लिक्विडमीट' की संज्ञा दे देते हैं।' वस्तुत: दूध को यह संज्ञा देना उचित नहीं है। दूध तो शुद्ध वानस्पतिक आहार है। लेखिकाद्वय ने प्रस्तुत लेख में इस तथ्य को वैज्ञानिक प्रमाणों से सिद्ध किया है। उनका प्रयास सराहनीय है।

बीते कुछ सालों में लोग शाकाहार की ओर तेजी से आकर्षित हुए हैं। देश के सर्वाधिक लोकप्रिय सितारे अमिताभ बच्चन, श्रीमती मेनका गाँधी, श्री पी.व्ही. नरसिम्हाराव, चर्चित अभिनेत्री जूही चावला, महिमा चौधरी एवं सुप्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी अनिल कुंबले भी मांसाहार नहीं करते। देश के अलावा विश्व के कई नामी गिरामी लोग पूर्णतः वेजिटेरियन हैं। म्यूजिक लीजेड सर पॉल मैक्कार्टिना, पूर्व टेनिस खिलाड़ी मार्टिना नवरातिलोवा, अदिति गोवित्रिकर आदि उन हस्तियों की लम्बी चौड़ी सूची के चंद नाम है जो मांसाहार करना पसंद नहीं करते।

पिछले कुछ दिनों से बहुत सारा साहित्य मांसाहार के विरोध में एवम् शाकाहार के प्रचार-प्रसार हेतु सामने आया है, इसके बावजूद शाकाहार प्रेमियों के मन को पीड़ा पहुँचाने वाली जो एक बात सामने आयी है वह है दूध को 'लिक्विड मीट' की संज्ञा देना। पिछले दिनों 15 जुलाई 2001 के दैनिक भास्कर के रविवारीय लेख 'क्या आप भी हैं वेजिटैरियन' में लेखक ने लिखा है कि, कई डाक्टर तो दूध के सेवन को तमाम बीमारियों का कारण बताते हैं। उनके अनुसार पूर्व अमेरिकन राष्ट्रपति बिल क्लिंटन के स्वास्थ्य सलाहकार डॉ. जॉन मैक्डूगल तो जानवरों के दूध को सीधे 'लिक्विड मीट' की संज्ञा देते हैं। डॉ. मैक्डूगल के अनुसार एनीमल फैट के कारण यह स्वास्थ्य के लिये उतना ही हानिकारक है जितना कि जानवरों का मांस।

इस संदर्भ में कुछ और लोगों के द्वारा भी दूध को मांस का अंश बताकर एक गहरी साजिश पिछले कुछ दिनों से चल रही है। तब दूध को सामिष आहार माना जाये या निरामिष? यह भी एक विचारणीय बात है। अधिकांश लोगों की सम्मति में दूध वानस्पतिक पदार्थों के समान है, क्योंकि दूध पशुजन्य होते हुए भी जीवित पदार्थ नहीं है। कुछ लोग दूध को मांस के समतुल्य समझते हैं और उसे रक्त की उपज मानते हैं पर यह मूर्खतापूर्ण बात है। यदि दूध रक्त या उसकी उपज होता तो शरीर में रक्त की अपरिमित मात्रा की आवश्यकता होती, इस पृथ्वी पर तब मादा जीवन असम्भव हो जाता और फलस्वरूप स्तनधारी फॉना बहुत पहले संसार से विलुप्त हो गया होता और हम भी पैदा होते ही मातृविहीन हो गये होते, क्योंकि भैंसे और गायें कई किलोग्राम कही-कहीं तो एक-एक मन दूध रोज देती हैं। स्त्रियों के भी तो कई सेर दूध होता है। यदि इतनी मात्रा में रक्त प्रतिदिन शरीर से बाहर निकल जाया करे तो कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। यह बात इसे सिद्ध करने के लिये काफी है कि दूध खून नहीं होता।

रक्त का दूध से कोई सम्बन्ध नहीं है सिवाय इसके कि रक्त आत्मसात भोजन को दुग्ध-ग्रन्थियों तक पहुँचाने का काम करता है जहाँ भोजन दूध में बदल दिया जाता है। दूध रक्त के समान शरीर का अनिवार्य अवयव नहीं है। स्तनों में दूध तब बनना शुरू होता है जब मादा बच्चे को जन्म दे चुकी होती है। दूध जीवनहीन पदार्थ है उसमें रक्त के समान कोष-रचना (सेल फार्मेशन) नहीं होती।

रक्त का एक अंश ही निकल जाने से काफी कमजोरी आ जाती है, जबकि कोई भी मादा सामान्य परिस्थितियों में, बच्चे को दूध पिलाकर दुर्बलता नहीं महसूस करती। दूध जीवनहीन होते हुए भी जीवनदायक होता है।

वर्तमान में दूध दुहने में कहीं-कहीं क्रूर विधियों (हार्मोन्स का इंजेक्शन आदि) को भी अपनाया जाने लगा है। पर दूध क्रूरता की उपज नहीं है। उसमें न हिंसा होती है और न ही हत्या। दूध पीना मीट खाने के बराबर होता तो प्रत्येक मनुष्य स्वजाति-भक्षक ही नहीं मातृहन्ता भी कहलाता, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी शैशवावस्था में अपनी माता का दूध पीता है। इसके बावजूद भी यदि हम दूध को मांसाहारी कहें, इसके पहले हमें यह जान लेना आवश्यक है कि हम अपनी माँ के स्नेहासिक्त आँचल से दूध पीकर ही पले बढ़े है। और हम मांसाहारी नहीं है। जन्म से कोई मांसाहारी नहीं होता। जन्म से तो सभी मनुष्य शाकाहारी ही होते हैं। मैं यह बात मानती हूँ कि दूध जानवरों के शरीर में बनता है। यह पशु निर्मित पदार्थ हैं फिर भी उसमें कोशिका जैसी कोई संरचना नहीं होती है। नाभिक या जीन्स इत्यादि जीवित तथ्यों का अभाव होता है। विभिन्न जैविक क्रियाएँ जैसे कि उत्सर्जन, श्वसन, निषेचन आदि भी दूध में नहीं होती हैं। दूध तो एक तरल द्रव्य है जो कि स्वयं ही शिशुओं के पोषण हेतु उत्पन्न होता है। दूध में मुख्य रूप से जल, प्रोटीन, वसा, कार्बोहाईड्रेट्स एवं कई खनिज तत्त्व होते हैं। हल्का सफेद-पीला रंग दूध में उपस्थित वसा कणों के कारण होता है।

प्राचीनकाल से दूध मनुष्य का प्रिय पेय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहा है। दूध को शास्त्रों में पृथ्वीलोक का अमृत कहा गया है, विशेषतः इसलिये कि दूध रसायन जीवनीय है। अतः वह शरीर की रोग प्रतिकारक शक्ति बढ़ाकर उसे सदा रोग मुक्त रखता है।

एक बार गाँधी जी से किसी ने जाकर कहा कि बापू जी आप साधना करते हैं और सुना है कि आप मार्गदर्शक हैं। मेरा जीवन अस्थिर है, मेरा मन अशांत है, संयम की ओर मेरा रुझान नहीं हो पा रहा है। मैं अस्वस्थ भी बहुत रहता हूँ। मेरे लिये इस स्थिति में सुख शांति पाने के लिये कुछ उपाय बताइए, कुछ मार्ग दर्शन दीजिए। गाँधी जी ने कहा कि यदि मन अशांत है, जीवन अस्थिर बना हुआ है, रोग घेर रहे हैं, तो ऐसा करो-कल से लौकी की सब्जी खाना और गाय का दूध पीना शुरु कर दो फिर हमारे पास आने की जरूरत नहीं है। अपने आप सब ठीक हो जायेगा। शायद लेखक इस बात से अनभिज्ञ है कि 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् है। विभिन्न वैज्ञानिकों का मत है कि जो प्राणी स्तनपान करते हैं वे अधिक आत्मविश्वास से भरे होते हैं।

उपर्युक्त वैज्ञानिक तथ्यों से स्पष्ट होता है कि यद्यपि दूध शाकाहार है फिर भी उसके उपयोग की मर्यादाएँ सीमित हैं। एक निश्चित अवधि के बाद दूध में भी जीवाणु क्रियाशील हो जाते हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि बछड़े को पर्याप्त स्तनपान कराने के पश्चात् ही दूध दुहना चाहिए, क्योंकि उस पर पहला अधिकार बछड़े का ही है। कुछ लोग दूध को अण्डे के समान ही मानते हैं, जबकि महान वानस्पतिक शास्त्री डॉ. वैक्टर ने भी सिद्ध कर दिया है कि अण्डे में भी हमारी तरह जीवन भड़कता है। जितना अंतर करुणा एवं क्रूरता में है, शांति एवं बर्बरता में है, उतना ही दूध और अण्डे में है। निर्णय आपको करना है। इनमें से आप क्या चुनते हैं दूध या अण्डा? करुणा या क्रूरता?

द्वारा - श्री सुरेन्द्र जैन (बस ओनर)
परवारी मोहल्ला, छतरपुर (म.प्र.)

भगवान महावीर के 2600वें जन्म कल्याणक वर्ष के उपलक्ष्य में श्री जम्बू स्वामी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, चौरासी मथुरा में

1. श्रमण ज्ञान भारती (जैन सिद्धान्त अध्ययन संस्थान)
2. भगवान महावीर होम्यो औषधालय का शुभारंभ

परम पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद तथा परमपूज्य उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से शुभमिती श्रावण कृष्णा 6 बुधवार दिनांक 11.7.2001 को सिद्धक्षेत्र परिसर में प्रातः 8.30 बजे से भव्य समारोह के साथ जैन सिद्धान्त अध्ययन के लिये श्रमण ज्ञान भारती संस्थान का उद्घाटन हुआ। सर्वप्रथम सामूहिक देवपूजन हुआ।

ब्र. अनीता दीदी द्वारा देव वन्दना के बाद भगवान महावीर के चित्र का अनावरण आगरा निवासी प्रमुख उद्योगपति श्री स्वरूपचन्द जी जैन (मारसन्स वाले) ने किया। इसी क्रम में आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज व उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज के चित्रों का अनावरण श्री ज्ञान चन्द जी, गाजियाबाद तथा श्री अनिल कुमार जी, दिल्ली ने किया। दीप प्रज्ज्वलन श्री सुमत चन्द जी देवेन्द्र कुमार जैन (बजाज बेटरी वाले) आगरा द्वारा किया गया। श्री रतन लाल बैनाड़ा, आगरा ने संस्थान की स्थापना का उद्देश्य अपनी उत्कृष्ट भाषा शैली में प्रकट किया तथा मंच का संचालन किया। समारोह के विशिष्ट अतिथि प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी जैन, फिरोजाबाद ने अपने सारगर्भित उद्बोधन में ऐसे संस्थानों की आज के समय परम आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि नव निर्माण व पंच कल्याणक महोत्सवों पर अटूट धन व्यय किया जा रहा है लेकिन ज्ञान के केन्द्र इन संस्थाओं की स्थापना व इनके संचालन के प्रति हम उदासीन हैं। यदि धर्म के मर्मज्ञ ज्ञाता व उपदेशक उत्पन्न नहीं होंगे तो आगे आने वाली पीढ़ी का धर्म के प्रति मार्गदर्शन कौन करेगा। श्री निरंजन लाल जी बैनाड़ा (आगरा) ने जो इस संस्थान के अधिष्ठाता है, समाधिमरण तक यहाँ रहकर संस्थान में आये बालकों को हर प्रकार से धार्मिक ज्ञान देने का संकल्प व्यक्त किया।

प्रथम वर्ष में संस्थान में प्रथम श्रेणी या उच्च प्रतिशत वाले हाईस्कूल उत्तीर्ण 15 छात्रों का चयन किया गया। यह सभी अपनी रूचि के अनुसार विज्ञान/वाणिज्य/ कलावर्ग विषयों की पढ़ाई के साथ संस्थान में धार्मिक शिक्षण प्राप्त करेंगे। श्रीमती सुभाष पंकज ने संस्थान में रहने वाले प्रत्येक प्रशिक्षार्थी की देखभाल करने का दायित्व लिया। वर्तमान में संस्थान की व्यवस्था क्षेत्र के पाँच कमरों व एक हॉल में की गयी है। उपस्थित अनेक लोगों ने संस्थान के लिये आर्थिक सहयोग देने की घोषणा की। क्षेत्र व संस्थान के अध्यक्ष सेठ विजय कुमार जैन, मंत्री योगेश जैन, खतौली वाले व अन्य सभी अतिथियों का क्षेत्र के मंत्री डॉ. जयप्रकाश जैन ने तिलक लगाकर स्वागत किया। श्री सुरेश चन्द्र जैन, दिल्ली को संस्थान का कोषाध्यक्ष तथा श्री अशोक कुमार छाबड़ा मथुरा को सहमंत्री मनोनीत किया गया।

इसी दिन प्रातः 11.30 बजे मंदिर क्षेत्र की बाह्य धर्मशाला में भगवान महावीर होम्यो औषधालय का प्रमुख उद्योगपति श्री निरंजन लाल जी बैनाड़ा (आगरा) द्वारा फीता काटकर उद्घाटन किया गया। यह औषधालय श्री मुनीन्द्र कुमार जैन, बैंक कालोनी मथुरा के सहयोग से स्थापित किया गया। औषधालय में योग्य अनुभवी चिकित्सक श्रीमती दीपा चक्रवर्ती अपनी सेवाएँ दे रही हैं। अभी औषधालय का समय प्रातः 9 से 11 बजे तक रखा गया है जिसको आवश्यकतानुसार आगे बढ़ाने का निर्णय किया गया।

सुनील कुमार शास्त्री
962, सेक्टर-7, आवास विकास कालोनी, बोदला, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवाऽभिनन्दी मुनि और मुनि-निन्दा

स्व.पं. जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

मुनियों को बनाने और बिगाड़ने वाले बहुधा गृहस्थ-श्रावक होते हैं और वे ही उनका सुधार भी कर सकते हैं, यदि उनमें संगठन हो, एकता हो और वे विवेक से काम लेवें। उनके सत्प्रयत्न से नकली, दम्भी और भेषी मुनि सीधे रास्ते पर आ सकते हैं। उन्हें सीधे रास्ते पर लाना सद्गृहस्थों और विवेकी विद्वानों का काम है। मुख्यतः असद्दोषोद्भावन का नाम निन्दा है, गौणतः सद्दोषोद्भावन का नाम भी निन्दा है, जबकि उसके मूल में द्वेषभाव सन्निहित हो। जब ऐसा कोई द्वेषभाव सन्निहित न होकर हृदय में उसके सुधार की, उसके संसर्गदोष से दूसरे के संरक्षण की भावना सन्निहित हो और अपना कर्त्तव्य समझकर सद्दोषों का उद्भावन किया जाये, तो वह निन्दा न होकर अपने कर्त्तव्य का पालन है।

जो भवका, संसारका, अभिनन्दन करता है, सांसारिक कार्यों में रुचि, प्रीति अथवा दिलचस्पी रखता है, उसे 'भवाऽभिनन्दी' कहते हैं। जो मुनिरूप में प्रव्रजित-दीक्षित होकर भवाऽभिनन्दी होता है वह 'भवाभिनन्दी मुनि' कहलाता है। भवाभिनन्दी मुनि स्वभाव से अपनी भवाभिनन्दिनी प्रकृति के वश भव के विपक्षीभूत मोक्ष[1] का अभिनन्दी नहीं होता, मोक्ष में अन्तरंग से रुचि, प्रीति, प्रतीति अथवा दिलचस्पी नहीं रखता। दूसरे शब्दों में यों कहिये, जो मुनि मुमुक्षु नहीं, मोक्षमार्गी नहीं, वह भवाभिनन्दी होता है। स्वामी समन्तभद्र के शब्दों में उसे 'संसारावर्तवर्ती' समझना चाहिये। भवरूप संसार बन्ध का कार्य[2] है और बन्ध मोक्ष का प्रतिद्वन्द्वी है, अतः जो बन्ध के कार्य का अभिनन्दी बना, उसमें आसक्त होता है वह स्वभाव से ही मोक्ष तथा मोक्ष का फल जो अतीन्द्रिय, निराकुल, स्वात्मोत्थित, अबाधित, अनन्त, शाश्वत, परनिरपेक्ष एवं असली स्वाधीन सुख है, उससे विरक्त रहता है, भले ही लोकानुरंजन के लिए अथवा लोक में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के अर्थ वह बाह्य में उसका (मोक्ष का) उपदेश देता रहे और उसकी उपयोगिता को भी बतलाता रहे, परन्तु अन्तरंग में वह उससे द्वेष ही रखता है।

भवाभिनन्दी मुनियों के विषय में निःसंग योगिराज श्री अमितगति प्रथम ने योगसार-प्राभृत के आठवें अधिकार में लिखा है-

भवाऽभिनन्दिनः केचित् सन्ति संज्ञा-वशीकृताः।
कुर्वन्तोऽपि परं धर्मं लोक-पंक्ति-कृतादराः॥18॥

'कुछ मुनि परम धर्म का अनुष्ठान करते हुए भी भवाऽभिनन्दी (संसारका अभिनन्दन करने वाले) अनन्त संसारी तक होते हैं, जो कि संज्ञाओं के[3], आहार, भय, मैथुन और परिग्रह नाम की चार संज्ञाओं-अभिलाषाओं के, वशीभूत हैं और लोकपंक्ति में आदर किये रहते हैं- लोगों के आराधने- रिझाने आदि में रुचि रखते हुए प्रवृत्त होते हैं।'

यद्यपि जिनलिंग को (निर्ग्रन्थ जैनमुनि-मुद्रा को) धारण करने के पात्र अति निपुण एवं विवेक-सम्पन्न मानव ही होते हैं[4] फिर भी जिनदीक्षा लेने वाले साधुओं में कुछ ऐसे भी निकलते हैं जो बाह्य में परम धर्म का अनुष्ठान करते हुए भी अन्तरंग से संसार का अभिनन्दन करने वाले होते हैं। ऐसे साधु-मुनियों की पहचान एक तो यह है कि वे आहारादि चार संज्ञाओं के अथवा उनमें से किसी के भी वशीभूत होते हैं, दूसरे लोकपंक्ति में (लौकिकजनों जैसी क्रियाओं के करने में) उनकी रुचि बनी रहती है और वे उसे अच्छा समझकर करते भी हैं। आहार-संज्ञा के वशीभूत मुनि बहुधा ऐसे घरों में भोजन करते हैं जहाँ अच्छे रुचिकर एवं गरिष्ठ-स्वादिष्ट भोजन के मिलने की अधिक संभावना होती है, उद्दिष्ट भोजन के त्याग की, आगमोक्त दोषों के परिवर्जन की, कोई परवाह नहीं करते, भोजन करते समय अनेक बाह्य क्षेत्रों से आया हुआ भोजन भी ले लेते हैं, जो स्पष्ट आगमाज्ञा के विरुद्ध होता है। भय-संज्ञा के वशीभूत मुनि अनेक प्रकार के भयों से आक्रान्त रहते हैं, परीषहों के सहन से घबराते तथा वनोवास से डरते हैं; जबकि सम्यग्दृष्टि सप्त प्रकार के भयों से रहित होता है। मैथुनसंज्ञा के वशीभूत मुनि ब्रह्मचर्य महाव्रत को धारण करते हुए भी गुप्त रूप से उसमें दोष लगाते हैं। और परिग्रह-संज्ञा वाले साधु अनेक प्रकार के परिग्रहों की इच्छा को धारण किये रहते हैं, पैसा जमा करते हैं, पैसे का ठहराव करके भोजन करते हैं, अपने इष्टजनों को पैसा दिलाते हैं, पुस्तकें छपा-छपाकर बिक्री करते-कराते रुपया जोड़ते हैं, तालाबन्द बाक्स रखते हैं, बाक्स की ताली कमण्डलु आदि में रखते हैं, पीछी में नोट छिपाकर रखते हैं, और अपनी पूजाएँ बनवाकर छपवाते हैं। ये सब लक्षण उक्त भवाभिनन्दियों के हैं जो पद्य के **'संज्ञावशीकृताः'** और **'लोकपंक्तिकृतादराः'** इन दोनों विशेषणों से फलित होते हैं और आजकल अनेक मुनियों में लक्षित भी होते हैं।

भवाभिनन्दी मुनियों की स्थिति को स्पष्ट करते हुए आचार्य-महोदय ने तदनन्तर एक पद्य और भी दिया है जो इस प्रकार है :-

मूढा लोभपराः क्रूरा भीरवोऽसूयकाः शठाः।
भवाभिनन्दिनः सन्ति निष्फलारम्भकारिणः॥19॥

इसमें बतलाया है कि 'जो मूढ़-दृष्टि-विकार को लिये हुए मिथ्यादृष्टि लोभ में तत्पर, क्रूर, भीरु, ईर्ष्यालु और विवेक-विहीन है वे निष्फल-आरम्भकारी-निरर्थक धर्मानुष्ठान करनेवाले भवाऽभिन्दी है। यहाँ भवाभिनन्दियों के लिये जिन विशेषणों का प्रयोग किया गया है वे उनकी प्रकृति के द्योतक हैं। ऐसे विशेषण-विशिष्ट मुनि ही प्रायः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त संज्ञाओं के वशीभूत होते हैं, उनके सारे धर्मानुष्ठान को यहाँ निष्फल, अन्तः सारविहीन घोषित किया गया है। इसके बाद उससे लोकपंक्ति का स्वरूप दिया है, जिसमें भवाभिनन्दियों का सदा आदर बना रहता है और वह इस प्रकार है -

आराधनाय लोकानां मलिनेनान्तरात्मना।
क्रियते या क्रिया बालैर्लोकपंक्तिरसौ मता।।20।।

'अविवेकी साधुओं के द्वारा मलिन अन्तरात्मा से युक्त होकर लोगों के आराधन- अनुरंजन अथवा अपनी और आकर्षण के लिए जो धर्म-क्रिया की जाती है वह 'लोक-पंक्ति' कहलाती है।'

यहाँ लौकिकजनों-जैसी उस क्रिया का नाम 'लोकपंक्ति' है जिसे अविवेकीजन दूषित-मनोवृत्ति के द्वारा लोकाराधन के लिये करते हैं अर्थात् जिस लोकाराधन में ख्याति-लाभ-पूजादि- जैसा अपना कोई लौकिक स्वार्थ सन्निहित होता है। इसी से जिस लोकाराधन रूप क्रिया में ऐसा कोई लौकिक स्वार्थ संनिहित नहीं होता और जो विवेकी विद्वानों के द्वारा केवल धर्मार्थ की जाती है वह लोकपंक्ति न होकर कल्याण कारिणी होती है, परन्तु मूढ़चित्त साधुओं के द्वारा उक्त दूषित मनोवृत्ति के साथ लोकाराधन के लिये किया गया धर्म पापबन्ध का कारण होता है। इसी बात को निम्न पद्य द्वारा व्यक्त किया गया है -

धर्माय क्रियमाणा सा कल्याणाङ्गं मनीषिणाम्।
तन्निमित्तः पुनर्धर्मः पापाय हतचेतसाम्।।21।।

इसके बाद मुक्ति किसको कैसे प्राप्त होती है इसकी संक्षिप्त सूचना करते हुए आचार्य महोदय ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की है कि 'इस मुक्ति के प्रति मूढचित्त भवाभिनन्दियों का विद्वेष (विशेष रूप से द्वेषभाव) रहता है -

कल्मष-क्षयतो मुक्तिर्भोग-संगम (वि) वर्जिनाम्।
भवाऽभिनन्दिनामस्यां विद्वेषो मूढचेतसाम्।।23।।

ठीक है, संसार का अभिनन्दन करने वाले दीर्घ-संसारी होने से उन्हें मुक्ति की बात नहीं सुहाती, नहीं रुचती, और इसलिये वे उससे प्रायः विमुख बने रहते हैं, उनसे मुक्ति की साधना का कोई भी योग्य प्रयत्न बन नहीं पाता, सब कुछ क्रियाकाण्ड ऊपरा-ऊपरी और कोरा नुमायशी ही रहता है।

मुक्ति से उनके द्वेष रखने का कारण वह दृष्टि विकार है जिसे मिथ्या-दर्शन कहते हैं और जिसे आचार्य-महोदय ने अगले पद्य में ही 'भवबीज' रूप से उल्लेखित किया है। लिखा है कि 'भवबीज' का वियोग हो जाने से जिनके मुक्ति के प्रति यह विद्वेष नहीं है वे भी धन्य हैं, महात्मा है और कल्याणरूप फल के भागी है।' वह पद्य इस प्रकार है -

नास्ति येषामयं तत्र भव-बीज-वियोगतः।
तेऽपि धन्या महात्मानः कल्याण-फल-भागिनः।।24।।

निःसंदेह संसार का मूल कारण मिथ्यादर्शन है, मिथ्यादर्शन के सम्बन्ध से ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्र होता है, जिन तीनों को भवपद्धति-संसार मार्ग के रूप में उल्लेखित किया जाता है, जो कि मुक्ति मार्ग के विपरीत है।[5] यह दृष्टि-विकार ही वस्तु-तत्त्व को उसके असली रूप में देखने नहीं देता, इसी से जो अभिनन्दनीय नहीं है उसका तो अभिनन्दन किया जाता है और जो अभिनन्दनीय है उससे द्वेष रक्खा जाता है! इस पद्य में जिन्हें धन्य, महात्मा और कल्याणफल-भागी बतलाया है उनमें अविरत-सम्यग्दृष्टि तक का समावेश है।

स्वामी समन्तभद्र ने सम्यग्दर्शन से सम्पन्न चाण्डाल-पुत्र को भी 'देव' लिखा है, आराध्य बतलाया है, और श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट को भ्रष्ट ही निर्दिष्ट किया है, उसे निर्वाण की[6] सिद्धि, मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

इस सब कथन से यह साफ फलित होता है कि मुक्तिद्वेषी मिथ्यादृष्टि भवाभिनन्दी, मुनियों की अपेक्षा देशव्रती श्रावक और अविरत-सम्यग्दृष्टि गृहस्थ तक धन्य हैं, प्रशंसनीय हैं तथा कल्याण के भागी हैं। स्वामी समन्तभद्रने ऐसे ही सम्यग्दर्शनसम्पन्न सद्गृहस्थो के विषय में लिखा है -

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो, नैव मोहवान्।
अनगारो, गृही श्रेयान् निर्मोहो, मोहिनो मुनेः।।

'मोह (मिथ्यादर्शन)[7] रहित गृहस्थ मोक्षमार्गी है। मोहसहित (मिथ्या-दर्शन-युक्त) मुनि मोक्षमार्गी नहीं है। (और इसलिये) मोही-मिथ्यादृष्टि मुनि से निर्मोही (सम्यग्दृष्टि) गृहस्थ श्रेष्ठ है।'

इससे यह स्पष्ट होता है कि मुनि मात्र का दर्जा गृहस्थ से ऊँचा नहीं है, मुनियों में मोही और निर्मोही दो प्रकार के मुनि होते हैं। मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ का दर्जा ऊँचा है, यह उससे श्रेष्ठ है। इसमें मैं इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि अविवेकी मुनि से विवेकी गृहस्थ भी श्रेष्ठ है और इसलिये उसका दर्जा अविवेकी मुनि से ऊँचा है।

जो भवाभिनन्दी मुनि मुक्ति से अन्तरंग में द्वेष रखते हैं वे जैन मुनि अथवा श्रमण कैसे हो सकते हैं? नहीं हो सकते। जैन मुनियों का तो प्रधान लक्ष्य ही मुक्ति प्राप्त करना होता है। उसी लक्ष्य को लेकर जिनमुद्रा धारण की सार्थकता मानी गई है।[8] यदि वह लक्ष्य नही तो जैन मुनिपना भी नहीं, जो मुनि उस लक्ष्य से भ्रष्ट हैं उन्हें जैन मुनि नहीं कह सकते, वे भेषी-ढोंगी मुनि अथवा श्रमणाभास हैं।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने, प्रवचनसार के तृतीय चारित्राधिकार में ऐसे मुनियों को 'लौकिकमुनि' तथा 'लौकिकजन' लिखा है। लौकिकमुनि-लक्षणात्मक उनकी वह गाथा इस प्रकार है -

णिग्गंथो पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहि कम्मेहि।
सो लोगिगो त्ति भणिदो संजम-तव-संजुदो चावि।।69।।

इस गाथा में बतलाया है कि 'जो निर्ग्रन्थरूप से प्रव्रजित हुआ है, जिसने निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन मुनि की दीक्षा धारण की है, वह यदि इस लोक-सम्बन्धी सांसारिक दुनियादारी के कार्यों में प्रवृत्त होता है तो तप-संयम से युक्त होते हुए भी उसे 'लौकिक' कहा गया है।' वह परमार्थिक मुनि न होकर एक प्रकार का सांसारिक दुनियादार प्राणी है। उसके लौकिक कार्यों में प्रवर्तन का आशय मुनि-पद को आजीविका का साधन बनाना, ख्याति-लाभ-पूजादि के लिये सब कुछ क्रियाकाण्ड करना, वैद्यक-ज्योतिष-मन्त्र-तन्त्रादि का व्यापार करना, पैसा बटोरना, लोगों के झगड़े-टण्टे में फँसना, पार्टीबन्दी करना, साम्प्रदायिकता को उभारना और दूसरे ऐसे कृत्य करने-जैसा हो सकता है जो समता में बाधक अथवा योगीजनों के योग्य न हो।

एक महत्त्व की बात इससे पूर्व की गाथा में आचार्य महोदय ने और कही है और वह यह है कि 'जिसने आगम और उसके द्वारा प्रतिपादित जीवादि पदार्थों का निश्चय कर लिया है, कषायों को शान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है और जो तपस्या में भी बढ़ा-चढ़ा है, ऐसा मुनि भी यदि लौकिक-मुनियों तथा लौकिक-जनों का संसर्ग नहीं त्यागता तो वह संयमी मुनि नहीं होता अथवा नहीं रह पाता है, संसर्ग के दोष से, अग्नि के संसर्ग से जल की तरह, अवश्य ही विकार को प्राप्त हो जाता है -

णिच्छिदसुत्तत्थपदो समिदकसाओ तवोधिगो चावि।
लोगिगजन-संसग्गं ण चयदि जदि संजदो ण हवदि।।68।।

इससे लौकिक-मुनि ही नहीं, किन्तु लौकिक-मुनियों की अथवा लौकिक जनों की संगति न छोड़ने वाले भी जैन मुनि नहीं होते, इतना और स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि इन सबकी प्रवृत्ति प्रायः लौकिकी होती है, जबकि जैन-मुनियों की प्रवृत्ति लौकिकी न होकर अलौकिकी हुआ करती है, जैसा कि श्री अमृतचन्द्राचार्य के निम्न वाक्य से प्रकट है-

अनुसरतां पदमेतत् करम्बिताचार-नित्य-निरभिमुखा।
एकान्त-विरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः।।13।।

- पुरुषार्थसिद्ध्युपाय

इसमें अलौकिक वृत्ति के दो विशेषण दिये गए हैं : एक तो करम्बित (मिलावटी-बनावटी-दूषित) आचार से सदा विमुख रहने वाली। दूसरा एकान्ततः (सर्वथा) विरतिरूपा-किसी भी पर-पदार्थ में आसक्ति न रखने वाली। यह अलौकिकी वृत्ति ही जैन मुनियों की जान-प्राण और उनके मुनि-जीवन की शान होती है। बिना इसके सब कुछ फीका और निःसार है।

इस सब कथन का सार यह निकला कि निर्ग्रन्थ रूप से प्रव्रजित-दीक्षित जिनमुद्रा के धारक मुनि दो प्रकार के हैं- एक वे जो निर्मोही-सम्यग्दृष्टि हैं, मुमुक्षु-मोक्षाभिलाषी हैं, सच्चे मोक्षमार्गी हैं, अलौकिकी वृत्ति के धारक संयत हैं, और इसलिये असली जैन मुनि हैं! दूसरे वे, जो मोहके उदयवश दृष्टिकार को लिये हुए मिथ्यादृष्टि हैं, अन्तरंग से मुक्तिद्वेषी हैं, बाहर से दम्भी मोक्षमार्गी हैं, लोकाराधन के लिये धर्मक्रिया करने वाले भवाभिनन्दी हैं, संसारावर्तवर्ती हैं, फलतः असंयत हैं, और इसलिये असली जैन-मुनि न होकर नकली मुनि अथवा श्रमणाभास हैं। दोनों की कुछ बाह्यक्रियाएँ तथा वेष सामान्य होते हुए भी दोनों को एक नहीं कहा जा सकता, दोनों में वस्तुतः जमीन-आसमान का सा अन्तर है। एक कुगुरु संसार-भ्रमण करने-कराने वाला है तो दूसरा सुगुरु संसार-बन्धन से छुड़ाने वाला है। इसी से आगम में एक को वन्दनीय और दूसरे को अवन्दनीय बतलाया है। संसार के मोही प्राणी अपनी सांसारिक इच्छाओं को पूर्ति के लिये भले ही किसी परमार्थतः अवन्दनीय की वन्दना-विनयादि करें, कुगुरु को सुगुरु मान लें, परन्तु एक शुद्ध सम्यग्दृष्टि ऐसा नहीं करेगा। भय, आशा, स्नेह और लोभ में से किसी के भी वश होकर उसके लिये वैसा करने का निषेध है।[9]

यदि भवाभिनन्दी लौकिक मुनि अपना बाह्य वेष तथा रूप लौकिक ही रखते तो ऐसी कोई बात नहीं थी, दूसरे भी अनेक ऐसे त्यागी अथवा साधु-संन्यासी हैं जो संसार का नेतृत्व करते हैं। परन्तु जो वेश तथा रूप तो धारण करते हैं मोक्षाभिनन्दी का और काम करते हैं भवाभिनन्दियों के -संसाराऽवर्तवर्तियों के, उनसे जिन-लिंग लज्जित तथा कलंकित होता है। यही उनमें एक बड़ी भारी विषमता है और इसी से परीक्षकों की दृष्टि में भेषी अथवा दम्भी कहलाते हैं। परोपकारी आचार्यों ने ऐसे दम्भी साधुओं से सावधान रहने के लिये मुमुक्षुओं को कितनी ही चेतावनी दी है और उनको परखने की कसौटी भी दी है, जिसका ऊपर संक्षेप में उल्लेख किया जा चुका है साथ ही यहाँ तक भी कह दिया है कि जो ऐसे लौकिक मुनियों का संसर्ग सम्पर्क नहीं छोड़ता वह निश्चित रूप से सूत्रार्थ-पदों का ज्ञाता विद्वान्, शमित-कषाय और तपस्या में बढ़ा-चढ़ा होते हुए भी संयत नहीं रहता, असंयत हो जाता है। इससे अधिक चेतावनी और ऐसे मुनियों के संसर्ग-दोष का उल्लेख और क्या हो सकता है? इस पर भी यदि कोई नहीं चेते, विवेक से काम नहीं ले और गतानुगतिक बनकर अपना आत्म-पतन करे तो इसमें उन महान् आचार्यों का क्या दोष?

मुनि-निन्दाका हौआ!

आजकल जैन-समाज में मुनिनिन्दा का हौआ खूब प्रचार में आ रहा है, अच्छे-अच्छे विद्वानों तक को वह परेशान किये हुए है और उन्हें मुनि-निन्दक न होने के लिये अपनी सफाई तक देनी पड़ती है। जब किसी मुनि की लौकिक प्रवृत्तियों, भवाभिनन्दिनी वृत्तियों, कुत्सित आचार-विचार, स्वेच्छाचार, व्रतभंग और आगम की अवहेलना जैसे कार्यों के विरोध में कोई आवाज उठाई जाती है तो उसका कोई समुचित उत्तर न देकर प्रायः मुनि-निन्दा का आरोप लगा दिया जाता है, और इस तरह मुनि-निन्दा का आरोप उन लोगों के हाथ का एक हथियार बन गया है, जिन्हें कुछ भी युक्तियुक्त कहते नहीं बनता। मुनि निन्दा का फल कुछ कथाओं में दुर्गति जाना और बहुत कुछ दुःख कष्ट उठाना चित्रित किया गया है, इस भय से ऐसे मुनियों की आगम-विरुद्ध दूषित प्रवृत्तियों को जानते हुए भी हर किसी को उनके खिलाफ मुँह खोलने तक का साहस नहीं होता। भय के वातावरण में सारा विचार-विवेक अवरुद्ध हो जाता है और कर्तव्य के रूप में कुछ भी करते-धरते नहीं बनता। नतीजा इसका यह हो रहा है कि ऐसे मुनियों का स्वेच्छाचार बढ़ता जाता है, जिसके फलस्वरूप समाज में अनेक कठिन समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। समाज के संगठन का विघटन हो रहा है, पार्टीबन्दियाँ शुरू हो गई हैं और पक्ष-विपक्ष की खींचातानी में सत्य कुचला जा रहा है। यह सब देखकर चित्त को बड़ा ही दुःख तथा अफसोस होता है और समाज के भविष्य की चिन्ता सामने आकर खड़ी हो जाती है।

समझ में नहीं आता, कि जो महान् जैनाचार्यों के उक्त कथनानुसार परमधर्म का अनुष्ठान करते हुए भी जैनमुनि ही नहीं, मुमुक्षु नहीं, मोक्षमार्गी नहीं, सांसारिक प्रवृत्तियों का अभिनन्दन करने वाले भवाभिनन्दी लौकिक-जन हैं उनके विषय में किसी सत्य-समालोचक पर मुनिनिन्दा का आरोप कैसे लगाया जा सकता है? मुनि हो तो मुनि-निन्दा भी हो सकती है, मुनि ही नहीं तब मुनि-निन्दा कैसी?

यदि विचार-क्षेत्र में अथवा वस्तु-निर्देश के रूप में कुछ मुनियों के दोषों को व्यक्त करना भी मुनि-निन्दा में दाखिल हो तो जिन महान् आचार्यों ने कतिपय मुनियों को भवाभिनन्दी, आहार-भय-मैथुनादि संज्ञाओं के वशीभूत, लोकाराधन के लिए धर्मक्रिया करने वाले मलिन अन्तरात्मा लिखा है, उनके लिए मूढ़ (मिथ्यादृष्टि) लोभपरायण, क्रूर, भीरु (डरपोक), असूयक (ईर्ष्यालु), शठ (अविवेकी) जैसे शब्दों का प्रयोग किया है, उन्हें मुक्ति-द्वेषी तक बतलाया है तथा लौकिक-कार्यों में प्रवृत्त करने वाले लौकिकजन एवं असंयत (अमुनि) घोषित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है, वे सब भी मुनिनिन्दक ठहरेंगे और तब ऐसी मुनि-निन्दा से डरने का कोई भी युक्तियुक्त कारण नहीं रह जाएगा। परन्तु वास्तव में वे महामुनि मुनि-निन्दक नहीं थे और न कोई उन्हें मुनि-निन्दक कहता या कह सकता है। उन्होंने वस्तुतत्त्व का ठीक निर्देश करते हुए उक्त सब कुछ कहा है और उसके द्वारा हमारी विवेक की आँख को खोला है, यह सुझाया है कि बाह्य में परमधर्म का आचरण करते हुए देखकर सभी मुनियों को समान रूप से सच्चे मुनि न समझ लेना चाहिए, उनमें कुछ ऐसे भेषी तथा दम्भी मुनि भी होते हैं जो मुक्ति-प्राप्ति के लक्ष्य से भ्रष्ट हुए लौकिक कार्यों की सिद्धि तथा ख्याति-लाभ-पूजादि की दृष्टि से ही मुनिवेष को धारण किये हुए होते हैं। ऐसे मुनियों को भवाभिनन्दी मुनि बतलाया है और उनके परखने की कसौटी को भी **'संज्ञावशीकृताः', 'लोकपंक्तिकृतादराः', 'लोभपराः'** आदि विशेषणों के रूप में हमें प्रदान किया है। इस कसौटी को काम में न लेकर जो मुनि मात्र के अथवा भवाभिनन्दी मुनियों के अन्धभक्त बने हुए हैं, उन अन्धश्रद्धालुओं को विवेकी नहीं कहा जा सकता और अविवेकियों की पूजा, दान, गुरुभक्ति आदि सब धर्मक्रियायें धर्म के यथार्थफल को नहीं फलतीं। इसी से विवेक (सम्यक् ज्ञान) पूर्वक आचरण को सम्यक्चारित्र कहा गया है। जो आचरण विवेकपूर्वक नहीं, वह मिथ्याचारित्र है और संसार-भ्रमण का कारण है।

अतः गृहस्थों-श्रावकों को बड़ी सावधानी के साथ विवेक से काम लेते हुए मुनियों को उक्त कसौटी पर कसकर जिन्हें ठीक जैनमुनि के रूप में पाया जाये उन्हीं को सम्यक्मुनि के रूप में ग्रहण किया जाये और उन्हीं को गुरु बनाया जाए, भवानन्दियों को नहीं, जो कि वास्तव में मिथ्यामुनि होते हैं। ऐसे लौकिक-मुनियों को गुरु मानकर पूजना पत्थर की नाव पर सवार होने के समान है, जो आप डूबती तथा आश्रितों को भी ले डूबती है। उन्हें अपने हृदय से मुनि-निन्दा के भ्रान्त-भय को निकाल देना चाहिए और यह समझना चाहिए कि जिन कथाओं में मुनिनिन्दा के पापफल का निर्देश है, वह सम्यक् मुनियों की निन्दा से सम्बन्ध रखता है, भवाभिनन्दी जैसे मिथ्यामुनियों की निन्दा से नहीं। वे तो आगम की दृष्टि से निन्दनीय-निन्दा के पात्र हैं ही। आगम की दृष्टि से जो निन्दनीय हैं उनकी निन्दा से क्या डरना? यदि निन्दा के भय से हम सच्ची बात कहने में संकोच करेंगे तो, ऐसे मुनियों का सुधार नहीं हो सकेगा। मुनिनिन्दा का यह हौआ मुनियों के सुधार में प्रबल बाधक है, उन्हें उत्तरोत्तर विकारी बनाने वाला अथवा बिगाड़ने वाला है। मुनियों को बनाने और बिगाड़ने वाले बहुधा गृहस्थ-श्रावक ही होते हैं और वे ही उनका सुधार भी कर सकते हैं, यदि उनमें संगठन हो, एकता हो और वे विवेक से काम लेवें। उनके सत्प्रयत्न से नकली, दम्भी और भेषी मुनि सीधे रास्ते पर आ सकते हैं। उन्हें सीधे रास्ते पर लाना सद्गृहस्थों और विवेकी विद्वानों का काम है। मुख्यतः असद्दोषोद्भावन का नाम निन्दा है, गौणतः सद्दोषोद्भावन का नाम भी निन्दा है, जबकि उसके मूल में व्यक्तिगत द्वेषभाव संनिहित हो, जबकि ऐसा कोई द्वेषभाव संनिहित न होकर हृदय में उसके सुधार की, उसके संसर्ग-दोष से दूसरों के संरक्षण की भावना संनिहित हो और अपना कर्तव्य समझकर सद्दोषों का उद्भावन किया जाए तो वह निन्दा न होकर अपने कर्तव्य का पालन है। इसी कर्तव्य पालन की दृष्टि से महान् आचार्यों ने ऐसे भवाभिनन्दी लौकिक मुनियों में पाये जाने वाले दोषों का उद्घाटन कर उनकी पोलपट्टी को खोला है और उन्हें दिगम्बर जैन मुनि के रूप में मानने-पूजने आदि का निषेध किया है। ऐसा करने में जिनशासन की निर्मलता को सुरक्षित रखना भी उनका एक ध्येय रहा है, जिसे समय-समय पर ऐसे दम्भी साधुओं-तपस्वियों और भ्रष्टचारित्र-पंडितों ने मलिन किया है, जैसा कि 13वीं शताब्दी के विद्वान् पं. आशाधरजी द्वारा उदधृत निम्न पुरातन पद्य से भी जाना जाता है -

पण्डितैर्भ्रष्टचारित्रैर्वठरैश्च तपोधनैः।
शासनं जिनचन्द्रस्य निर्मलं मलिनीकृतम्।।

इस पद्य में उन भवाभिनन्दी साधुओं के लिये 'वठर' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है दम्भी, मायावी तथा धूर्त और पंडितों के लिये प्रयुक्त 'भ्रष्टचारित्रैः' पद में धार्मिक तथा नैतिक चरित्र से भ्रष्ट ही नहीं, किन्तु अपने कर्तव्य से भ्रष्ट विद्वान् भी शामिल हैं। जिन विद्वानों को यह मालूम है कि अमुक आचार-विचार आगम के विरुद्ध है, भवानिन्दी मुनियों- जैसा है और निर्मल-जिनशासन तथा पूर्वाचार्यों की निर्मल कीर्ति को मलिन करने वाला है, फिर भी किसी भय, आशा, स्नेह, अथवा लोभादि के वश होकर वे उसके विरोध में कोई आवाज नहीं उठाते, अज्ञ जनता को उनके विषय में कोई समुचित चेतावनी नहीं देते, प्रत्युत इसके, कोई-कोई विद्वान् तो उनका पक्ष तक लेकर उनकी पूजा-प्रशंसा करते हैं, ठकुरसुहाती बातें कहकर असत्य का पोषण करते और दम्भ को बढ़ावा देते हैं, यह सब भी चरित्र-भ्रष्टता में दाखिल है, जो विद्वानों को शोभा नहीं देता। ऐसा करके वे अपने दायित्व से गिर जाते हैं और पूर्वाचार्यों की निर्मलकीर्ति तथा निर्मल-जिनशासन को मलिन करने में सहायक होते हैं। अतः उन्हें सावधान होकर चारित्रभ्रष्टता के इस कलंक से बचना चाहिए और मुनिनिन्दा के व्यर्थ के हौए को दूर भगाकर उक्त भ्रष्टमुनियों के सुधार का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। हर प्रकार से आगम-वाक्यों के विवेचनादि-द्वारा उन्हें उनकी भूलों एवं दोषों का समुचित बोध कराकर सन्मार्ग पर लगाना चाहिए और सतत प्रयत्न द्वारा समाज में ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिए, जिससे भवाभिनन्दी मुनियों का उस रूप में अधिक समय तक टिकाव न हो सके और जो सच्चे साधु हैं उनकी चर्या को प्रोत्साहन मिले।

संदर्भ सूची :-

1. मोक्षस्तद्विपरीतः। (समन्तभद्र)
2. बन्धस्य कार्यः संसारः। (रामसेन)
3. आहार - भय - परिग्गह - मेहुण - सण्णाहि मोहितोसि तुमं।
   भमिओ संसारवणे आणाइकालं अणप्पवसो॥10॥
   -कुन्दकुन्द भावपाहुड
4. मुक्तिं यियासता धार्येज्जिनलिगं पटीयसा।
   - योगसार प्राभृत 8-1
5. सद्दृष्टि - ज्ञान - वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
   यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः॥ (समन्तभद्र)
6. दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्य णात्थि णिव्वाणं। (दंसणपाहुड)
7. मोहो मिथ्यादर्शनमुच्यते - रामसेन, तत्वानुशासन।
8. मुक्तिं यियासता धार्येज्जिनलिंगं पट्टीयसा।
   (योगसार प्रा. 8 -1)
9. भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्।
   प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः॥
   - स्वामी समन्तभद्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवकोटि विशुद्धि

स्व. पं. मिलापचन्द्र कटारिया

जिन आहारादि के उत्पादन में मुनि का मन, वचन, काय के द्वारा कृत कारित अनुमोदित रूप कुछ भी योगदान न हो ऐसा आहारादि का लेना मुनि के लिये नवकोटि विशुद्धिदान कहलाता है। अर्थात् जो आहारादि मुनि के मन के द्वारा कृत-कारित-अनुमोदित न हो, न उनके वचन के द्वारा कृत-कारित अनुमोदित हो और न उनके काय के द्वारा कृत-कारित-अनुमोदित हो ऐसे आहारादि का दान नवकोटिविशुद्ध दान कहलाता है। मतलब कि देयवस्तु के सम्पादन में मुनि का कुछ भी संपर्क नहीं होना चाहिए। इससे आहारादि के निमित्त हुआ आरम्भदोष मुनि को नहीं लगता है। वरना वह मुनि अधःकर्म जैसे महादोष का भागी होता है। अनेक ग्रन्थों में नवकोटि विशुद्धि का यही स्वरूप लिखा मिलता है, किन्तु आचार्य जिनसेन ने आदि पुराण पर्व 20 में नवकोटिविशुद्धि का एक अन्य स्वरूप भी लिखा है।

यथा-

दातुर्विशुद्धता देयं पात्रं च प्रपुनाति सा।
शुद्धिर्देयस्य दातारं पुनीते पात्रमप्यदः।।136।।
पात्रस्य शुद्धिर्दातारं देयं चैव पुनात्यतः।
नवकोटिविशुद्धं तद्दानं भूरिफलोदयम्।।137।।

अर्थ - दाता की शुद्धि देय और पात्र को पवित्र बनाती है। देय की शुद्धि दाता और पात्र को शुद्ध करती है एवं पात्र की शुद्धि दाता देय को पवित्र करती है। इस प्रकार का नवकोटि शुद्ध दान प्रचुर फल का देने वाला होता है।

इसमें जो लिखा है उसका अभिप्राय ऐसा है कि दाता, देय (दान का द्रव्य) और पात्र (दान लेने वाला) इन तीनों में यदि तीनों ही अशुद्ध हों तब तो वह दानविधि दोषास्पद है ही। किन्तु इन तीनों में से कोई भी दो अशुद्ध हों और एक शुद्ध हो तो उस हालत में भी वह दानविधि दोषास्पद ही है। यही नहीं, तीनों में से यदि दो शुद्ध हों और सिर्फ एक ही कोई सा अशुद्ध हो तब भी वह दान विधि दोषास्पद ही समझनी चाहिए। मतलब कि दान विधि में दाता देय और पात्र ये तीनों ही निर्दोष होने चाहिये, तब ही वह बहुत फल को दे सकती है। तीनों में कोई एक भी यदि संदोष होगा तो वह दान विधि प्रशस्त नहीं मानी जा सकती है।

उक्त श्लोकद्वय में लिखा है कि दाता की शुद्धि देय और पात्र को पवित्र बनाती है। इस लिखने का भाव यह है कि यद्यपि देय और पात्र शुद्ध है मगर दाता अशुद्ध है तो इस एक की अशुद्धि ही सब दान विधि को सदोष बना देगी और दाता व पात्र शुद्ध हैं मगर देय (दान का द्रव्य) अशुद्ध है तो यहाँ भी इस एक की अशुद्धि ही समस्त दान विधि को सदोष बना डालेगी। इसी तरह दाता और देय शुद्ध हैं मगर पात्र अशुद्ध है तो वह दानविधि भी सारी की सारी सदोष ही समझी जाएगी।

जिनसेनाचार्य का यह कथन आशाधर ने सागार धर्मामृत अध्याय 5 श्लोक 47 की टीका में तथा अनगारधर्मामृत के 5वें अध्याय के अन्त में और शुभचन्द्र ने कार्तिकेयानुप्रेक्षा की गाथा 390 की टीका में उद्धृत किया है।

किन्तु सोमदेव ने यशस्तिलक के निम्न श्लोक में जिनसेन के उक्त कथन के विरुद्ध लिखा है।

भुक्तिमात्रप्रदाने हि का परीक्षा तपस्विनाम्।
ते सन्तःसन्त्यसन्तो वा गृही दानेन शुद्धयति।।818।।

अर्थ - भोजनमात्र के देने में साधुओं की क्या परीक्षा करनी? वे चाहे श्रेष्ठ हों या हीन हों, गृहस्थ तो उन्हें दान देने से शुद्ध हो ही जाता है।

सोमदेव ने इस श्लोक में यह शिक्षा दी है कि मुनि को आहार दान देते वक्त गृहस्थ को यह नहीं देखना चाहिए कि यह मुनि आचारवान् है या आचारभ्रष्ट है। उसकी जाँच पड़ताल करने की जरूरत नहीं है। मुनि चाहे कैसा ही अच्छा बुरा क्यों न हो, गृहस्थ को तो आहारदान देने का अच्छा ही फल मिलेगा।

सोमदेव का ऐसा लिखना जिनसेनाचार्य के आम्नाय के विरुद्ध है, क्योंकि जिनसेन ने ऊपर यह प्रतिपादन किया है कि, पात्र की शुद्धि दाता और देय दोनों को पवित्र बनाती है। प्रकारांतर से इसी को यों कहना चाहिए कि पात्र की (दान लेने वाले साधु की) अशुद्धि दाता और देय को भी अशुद्ध बना देती है। अर्थात् उत्तमदाता और उत्तम देय के साथ-साथ दान लेने वाला भी सुपात्र होना चाहिए तभी दानी को दान का यथेष्टफल मिलता है।

महर्षि जिनसेन और सोमदेव के इन परस्पर विरुद्ध वचनों में किनका वचन प्रमाण माना जाए यह निर्णय हम विचारशील पाठकों पर ही छोड़ते हैं।

जैन निबन्ध रत्नावली (द्वितीय भाग) से साभार

दयाभाव के साथ देखभाल, हिंसाप्रेमी हतप्रभ

दयोदय तीर्थ में बीमार और मूक पशुओं की देखभाल, दयाभाव के साथ की जा रही है। डॉ. अकलंक जैन के नेतृत्व में पूरी टीम जुटी हुई है। पशुओं की चोट पर दवाई लगाई जा रही है और उन्हें आवश्यक औषधियाँ, भोजन-पानी दिया जा रहा है। गौशाला में पहुँचे इन ढेर पशुओं को देखकर श्रद्धालुओं ने कहा- गौशाला की स्थापना का उद्देश्य पूरा हो रहा है। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की मौजूदगी में मूक जानवरों का वहाँ पहुँचना और उन्हें राहत मिलना, भगवान के आशीर्वाद के समान है। दयोदय तीर्थ के अशोक जैन, अरविंद जैन ने कहा कि अहिंसा वर्ष में किये जा रहे इस कृत्य से सभी हिंसा प्रेमी हतप्रभ हैं।

(दैनिक भास्कर, जबलपुर 7 सितम्बर, 2001 से साभार)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिष्ठाचार्यों के लिये एक विचारणीय विषय मोक्षकल्याणक

स्व. पं. मिलापचन्द्र कटारिया

आजकल प्रतिष्ठाचार्य भगवान् अरहन्त देव की प्रतिष्ठा में मोक्षकल्याण के विधान में अग्निकुमार देव के मुकुट से उत्पन्न अग्नि में भगवान् के दाह संस्कार का दृश्य दिखाते हैं। ऐसा करना उनका शास्त्रसम्मत प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि दाह संस्कार के समय में जब भगवान् अरिहन्त ही न रहेंगे तो उनकी प्रतिमा भी अरहन्त प्रतिमा कैसे मानी जायेगी? दाह संस्कार भगवान् के निर्वाण होने के बाद किया जाता है। उस वक्त अरिहन्त अवस्था का लेश भी नहीं रहता है। अरिहन्तदेव के अघातिया कर्मों का नाश होता नहीं और दाह संस्कार उनका अघातिया कर्मों के नाश होने के बाद ही किया जाता है। वर्तमान में प्रचलित किसी भी प्रतिष्ठाशास्त्र में दाह-संस्कार का दृश्य दिखाने का उल्लेख नहीं है। फिर न जाने ये प्रतिष्ठाचार्य मनमानी कैसे कर रहे हैं? चूँकि भविष्य में प्रतिमा अरिहन्तदेव की मानी जायेगी, अतः उनका मोक्ष गमन दृश्यरूप में बताना किसी तरह उचित नहीं है अर्थात् केवलज्ञानी भगवान् का धर्मोपदेश-विहार आदि बताने के बाद उनका दृश्यरूप में मोक्ष गमन न बताकर उनके मोक्ष गमन का मात्र स्मरण कर लेना चाहिये कि इसके बाद भगवान् मोक्ष पधार गये।

इसी आशय को लेकर जयसेन ने स्वरचित प्रतिष्ठा शास्त्र के पद्य नं. ९११ के आगे गद्य में ऐसा लिखा है-

'निर्वाणभक्तिरेव निर्वाण कल्याणारोपणं,
साक्षात्तु न विधेयं स्मरणीयमेवेति।

इसकी वचनिका

'अर पंचकल्याणनि में च्यारिकल्याण तो विधान संयुक्त किया। अर पंचम कल्याण मोक्षकल्याण है सो निर्वाणभक्ति पाठमात्र ही आरोपण करना। साक्षात् विधान नहीं करना। स्मरणमात्र ही है, ऐसा अनिर्वाच्य समझि लेना।'

यहाँ मोक्षकल्याण का विधान निर्वाणभक्ति का पढ़ लेना मात्र बताया है और साक्षात् विधान करने का निषेध किया है। ऐसी सूरत में प्रभु के दाह-संस्कार को दृश्यरूप में बताना साक्षात् विधान करना होगा और स्पष्ट ही शास्त्राज्ञा का उल्लंघन करना कहलावेगा। जयसेन ने मोक्षगमन का साक्षात् विधान नहीं लिखने के साथ ही साथ मोक्षकल्याण के लिये इन्द्रादि देवों का आगमन भी नहीं लिखा है और न चौबीस तीर्थंकरों की मोक्षतिथियों की पूजा ही लिखी है। जबकि वे अन्य कल्याणकों में उन कल्याणकों की तिथियों की पूजा लिखते रहे हैं। इससे यही फलितार्थ निकलता है कि जयसेन की दृष्टि में अर्हत्प्रतिमा में मोक्षकल्याण की प्रधानता नहीं है। और जबकि मोक्षकल्याण में देवों के आगमन का ही उल्लेख नहीं है तो अग्निकुमारदेव के मुकुट से अग्नि उत्पन्न करना आदि दृश्य दिखाना स्पष्ट ही शास्त्र विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त अरिहन्त मूर्ति के पादपीठ पर जो प्रतिष्ठा की तिथि अंकित की जाती है वह भी ज्ञानकल्याणक के दिन की ही अंकित की जाती है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि अर्हत्प्रतिमा में मोक्षकल्याण का साक्षात् विधान नहीं है, स्मरणमात्र है। साक्षात् विधान असंगत है (सिद्ध प्रतिमा में पंचम कल्याण प्रदर्शन फिर भी संगत हो सकता है, अर्हत्प्रतिमा में नहीं)।

आशा है वर्तमान में प्रतिष्ठाचार्य इस पर गम्भीरता से विचार करेंगे। उनके विचारार्थ ही हमने यह लेख प्रस्तुत किया है। अगर अर्हत्प्रतिमा में दाह-संस्कार का विधान करना उन्हें भी अयुक्त नजर आये तो उनका कर्तव्य है कि आगे के लिये उन्हें ऐसा करना बन्द करना चाहिये, ताकि गलत परम्परा यहीं समाप्त हो जाये। प्रतिष्ठासम्बन्धी और भी भूलें हमने पहले दिखाई थीं जिनकी चर्चा 'जैन निबन्ध रत्नावली' पुस्तक में की गई है। उन पर भी ध्यान दिया जाये ऐसी प्रार्थना है।

जैन निबन्ध रत्नावली
(द्वितीय भाग) से साभार

निखर उठेगा जीवन कुन्दन

ऋषभ समैया 'जलज'

ढीले करें मोह के बंधन
सहज शांत हो मन का क्रंदन

अपनी अपनी छवि निहारें
रख अपने भावों का दर्पन

विषय-वासनाओं के विषधर
दूषित नहीं कर सके चंदन

समता-सुधा-सरस-सुखदायी
काँटों सी चुभती है अनबन

देहरी-द्वारे शुभ रांगोली
साफ-सजा हो मन का आँगन

राग-द्वेष का मैल छुड़ाने
पल-पल भेदज्ञान का मंजन

चाह-दाह से आह मिली है
सुफल हुआ निष्कांछित वंदन

संयम आँच खोट विलगाती
निखर उठेगा, जीवन कुंदन

सतत घटाए आकुलताएँ
निज शुद्धातम का सद्चिंतन

अपने घर में चैन-चहक है
बाहर है भटकन ही भटकन

निखार भवन, कटरा बाजार,
सागर (म.प्र.) - 470002

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा - समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

जिज्ञासु - पंडित राजकुमार जी शास्त्री बरायठा

जिज्ञासा - 'निःशल्यो व्रती' इस सूत्र में व्रती से तात्पर्य और गुणस्थान अपेक्षा खुलासा करें। माया शल्य और माया कषाय में क्या अन्तर है? माया कषाय तो नौवें गुणस्थान तक होती है।

समाधान - 'निःशल्यो व्रती' सूत्र में जिन तीन शल्यों का वर्णन किया गया है उनकी परिभाषा आगम में इस प्रकार आती है-

(क) माया शल्य- यह जीव बाहर में बगुले जैसे वेश को धारण कर लोक को प्रसन्न करता है, वह मायाशल्य है।

(ख) मिथ्या शल्य- अपना निरंजन शुद्ध परमात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचि रूप सम्यक्त्व से विलक्षण मिथ्या शल्य है।

(ग) निदान शल्य- देखे-सुने और अनुभव में आए हुए भोगों में जो निरतर चित्त देता है, वह निदान शल्य है।

(बृहद् द्रव्यसंग्रह गाथा-42 की टीका)

उपर्युक्त परिभाषाओं को अच्छी प्रकार देखने से प्रतीत होता है, कि उपर्युक्त तीनों शल्यों में से किसी भी एक शल्यवाला जीव सम्यक्दृष्टि भी नहीं हो सकता, क्योंकि न तो उसके बगुले जैसा मायाचार होता है, न उसके सम्यक्त्व से विलक्षण सिद्धान्त होता है और न उसके भोगों में निरंतर चित्त होता है। अतः तीनों शल्यवाला मिथ्यादृष्टि ही होता है, ऐसा मानना चाहिए। यद्यपि किसी भी शास्त्र में, मूल में या टीका में, इस प्रकार का वर्णन मेरे देखने में नहीं आया, फिर भी परिभाषाओं से तो यही स्पष्ट होता है।

माया शल्य अलग है और माया कषाय अलग! जैसे कोई साधु बहिरंग में तो अपने को साधु दिखाता हो और अंतरंग में किसी अन्य उद्देश्य से (मंदिर में चोरी आदि करना, अपने परिवार को रुपये इकट्ठे करके भेजना आदि) साधु बना होने के कारण साधु के अयोग्य आचरण छुपकर करता हो, लोग मेरे अंतरंग आचरण को नहीं जान पा रहे हैं, ऐसा सोचकर प्रसन्न होता हो उसके माया शल्य होती है, जबकि माया कषाय तो अपने हृदय के विचार को छुपाने की जो चेष्टा है, उसे कहते हैं। वह बाँस की जड़ मेढ़े का सींग, गोमूत्र की रेखा और लेखनीवत्/खुरपा के समान, चार प्रकार की होती है और विभिन्न गुणस्थानों तक पायी जाती है। ये भेद माया कषाय के हैं माया शल्य के नहीं।

जिज्ञासा - क्या छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि के निदान आर्त्तध्यान होता है?

समाधान - प्रमत्तसंयतों के निदान को छोड़कर अन्य तीन आर्त्तध्यान हो सकते हैं। प्रमाण इस प्रकार हैं-

1. प्रमत्तसंयतानां तु निदानवर्ज्यमन्यदार्त्तत्रयं। सर्वार्थ सिद्धि।

अर्थ-प्रमत्तसंयतों के निदान को छोड़कर तीन आर्त्तध्यान होते हैं।

2. निदानं वर्जयित्वा अन्यदार्त्तत्रयं प्रमादोदयोद्रेकात् कदा चित्प्रमत्तसंयतानां भवति। (राजवार्तिक 9/34 टीका)

अर्थ - प्रमत्तसंयतों के प्रमाद के तीव्र उद्रेक से निदान को छोड़कर बाकी के तीन आर्त्तध्यान कभी-कभी हो सकते हैं।

3. प्रमत्तसंयतानां मुनीनां षष्ठगुणस्थानवर्तिनाम् निदानं बिना त्रिविधमार्त्तध्यानं स्यात्। (कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा 474 की टीका)

अर्थ - छठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्तसंयत मुनियों के निदान के बिना तीन आर्त्तध्यान होते हैं।

4. संयतासंयतेष्वेतच्चतुभेदं प्रजायते। प्रमत्तसंयतानां तु निदान रहितं त्रिधा॥39॥ ज्ञानार्णव 25/39

अर्थ- यह आर्त्तध्यान संयतासंयतनामा पाँचवें गुणस्थान पर्यन्त तो चार भेद रूप रहता है, किन्तु छट्ठे प्रमत्तसंयत गुणस्थान में निदान रहित तीन ही प्रकार का उत्पन्न होता है।

जिज्ञासा- शुभोपयोग की भूमिका कब बनती है, तथा वह किस गुणस्थान तक रहता है?

समाधान- शुभोपयोग के गुणस्थानों के संबंध में प्रवचन सार गाथा-9 की टीका में आचार्य जयसेन ने इस प्रकार कहा है- मिथ्यात्व सासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः। तदनन्तरमसंयतसम्यग्दृष्टिदेशविरत-प्रमत्तसंयतगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः।

अर्थ- मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से अशुभोपयोग है इसके आगे असंयत सम्यक्दृष्टि, देशविरत व प्रमत्तसंयत इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से शुभोपयोग है।

वृहद्द्रव्य संग्रह गाथा-34 की टीका में इस प्रकार कहा है- मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रगुणस्थानेषूपर्युपरिमन्दत्वेनाशुभोपयोगोवर्त्तते, ततोऽप्यसंयतसम्यक्दृष्टिश्रावकप्रमत्तसंयतेषु पारम्पर्येण शुद्धोपयोगसाधक उपर्युपरि तारतम्येन शुभोपयोग वर्त्तते।

अर्थ- मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र इन तीनों गुणस्थानों में ऊपर-ऊपर मन्दता से अशुभोपयोग रहता है। उसके आगे असंयत सम्यक्दृष्टि, श्रावक और प्रमत्तसंयत नामक जो तीन गुणस्थान हैं, उनमें परंपरा से शुद्धोपयोग का साधक ऊपर-ऊपर तारतम्य से शुभोपयोग प्रवर्त्तता है।

इसके अलावा समयसार गाथा 14 की टीका में आचार्य जयसेन ने अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में भी शुभौपयोग माना है। कहा है- 'सराग सम्यक्दृष्टि लक्षणे शुभोपयोगे प्रमत्ताप्रमत्त संयतापेक्षया वा।'

इस प्रकार चौथे से छठे गुणस्थान अथवा सातवें गुणस्थान तक शुभोपयोग होता है। यहाँ पर शुभोपयोग की व्याख्या में मिथ्यात्व का हटना तथा केवल कषाय का रहना अभीष्ट है। लेकिन आगम में अन्यत्र जहाँ तीव्र कषाय की अपेक्षा अशुभोपयोग और मंद कषाय की अपेक्षा शुभोपयोग ऐसा कहा गया है वह भी ठीक ही है। इस अपेक्षा से मंद कषायपरिणाम, मिथ्यादृष्टि के भी संभव होने से उसके भी शुभोपयोग होता है। दोनों कथनों में भिन्न-भिन्न विवक्षा है, अन्य कोई बाधा नहीं है।

जिज्ञासु - डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल अमलाई

जिज्ञासा - पंचम काल में कोई भव्यात्मा क्या एक भवावतारी हो सकता है? क्या कोई तीसरे नरक या तीसरे स्वयं से ऊपर जा सकता है?

समाधान- संयम प्रकाश उत्तरार्द्ध भाग-2 पृष्ठ 657 के अनुसार, इस पंचमकाल में भरतक्षेत्र से 123 जीव सीधे विदेहक्षेत्र जाकर मोक्ष पधारेंगे। इससे सिद्ध है कि ये एक भवावतारी जीव भी यहाँ होंगे।

कर्म प्रकृति ग्रंथ गाथा 88 के अनुसार पंचमकाल में 3 हीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संहनन पाये जाते हैं। अर्थात् अर्द्धनाराच, कीलक और असंप्राप्ता-सृपाटिका। इनके जाने के बारे में भी कर्म प्रकृति ग्रंथ गाथा 83,85 में ऐसा लिखा है- अर्द्धनाराचवाला 16वें स्वर्ग तक, कीलकवाला बारहवें स्वर्ग तक तथा असंप्राप्ता. वाला 8वें स्वर्ग तक जा सकता है। नरक जाने के बारे में, असंप्राप्ता. वाला तीसरे नरक तक, कीलकवाले पांचवें नरकतक, अर्द्धनाराचवाले तथा वज्रनाराचवाले छठे नरक तक जा सकते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि पंचमकाल का जीव 16वें स्वर्ग तथा 6वें नरक तक जा सकता है। वर्तमान में हमारे आपके ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तिम संहनन हो। अतः हम/आप आठवें स्वर्ग तथा तीसरे नरक तक ही जा सकते हैं।

जिज्ञासा - वैयावृत्य तप मुनियों के लिए है या श्रावकों के लिए? वैयावृत्ति क्या प्रतिदिन आवश्यक होती है या जब शरीर की दशानुसार चित्त अस्थिर हो। मुनिराज अस्नानवृत्ति होते हैं। स्नान प्रायः जल से होता है। जलस्नान त्यागी को क्या प्रतिदिन तैलमर्दन कराना आगमोचित है?

समाधान - वैय्यावृत्ति तप मुनियों के अंतरंग तक में तो तप रूप है। परन्तु श्रावकों के भी षट्करमों में तप के अंतर्गत आता है। रत्नकरण्डकश्रावकाचार श्लोक 112 के अनुसार-

व्यापत्तिव्यपनोद, पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोन्योपि संयमिनाम्॥

अर्थ- सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्रीति से देशव्रत और सकलव्रत के धारक संयमी जनों की, नाना प्रकार की आपत्ति को दूर करना पैरों का, हस्तादि अंगों का दावना और इसके सिवाय और भी जितना कुछ उपकार करना है वह वैय्यावृत्य कहा जाता है।

प्रवचनसार गाथा 254 कीटीका में कहा है 'यह वैय्यावृत्य रूप चर्या रागसहित होने के कारण श्रमणों को गौण होती है और गृहस्थों के क्रमशः परम निर्वाण सुख का कारण होने से मुख्य है। यह वैय्यावृत्य परिस्थिति के अनुसार प्रतिदिन भी आवश्यक होती है। जैसे एक मुनि महाराज को शौच में एक-डेढ़ घंटा लगता है। उनकी प्रतिदिन वैय्यावृत्य हम श्रावकों को करना आवश्यक है। नियम नहीं बनाया जा सकता। पात्र की स्थिति पर निर्भर करता है।

श्री मूलाचार में बहुत स्थानों पर लिखा है कि मुनि को तेल मर्दन नहीं कराना चाहिए। (पृ. 7,38 और दूसरे भाग में पृ. 38,48,77,118) पर पूर्वार्द्ध गाथा 375 की टीका में मुनि को अपने गुरु की तेल मालिश करना, कायिक विनय तप कहा है। जब मुनिराज अपने आचार्य की तेल मालिश कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं कर सकते। इस सब का तात्पर्य यह है कि साधु को या आचार्य को अपनी तेल मालिश नहीं कराना चाहिए। पर श्रावकों को, व्रती की तथा मुनिराज की तेल मालिश करना आगमसम्मत है। इसे विनय या वैय्यावृत्य तप कहा है।

जिज्ञासु - श्री कैलाश चन्द्र जी जयपुर

जिज्ञासा - क्या शुभोपयोग से शुभास्रव ही होता है या निर्जरा भी होती है?

समाधान- शुभोपयोग से शुभास्रव व निर्जरा दोनों होते हैं, और शुद्धोपयोग से मात्र निर्जरा ही होती है, आस्रव और बंध नहीं होता है। कुछ विद्वान शुभोपयोग को हेय बताते हैं, क्योंकि उससे शुभास्रव ही होता है, निर्जरा नहीं। इस संबंध में निम्न आगम प्रमाण दृष्टव्य है-

(अ) 'सुह-सुद्ध परिणामेहिं कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववत्ती दो' (जयधवल 1/6)

अर्थ- शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्म का क्षय नहीं मानने पर कर्मों का क्षय कभी होगा ही नहीं।

(ब) मोहनीय कर्म का क्षय धर्मध्यान का फल है। क्योंकि सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान के चरम समय में उसका क्षय देखा जाता है। इससे सिद्ध होता है कि धर्म ध्यान 10वें गुणस्थान तक होता है। और धर्मध्यान शुभोपयोग का अपर नाम है। (धवल 13/81)

आचार्य वीरसेन स्वामी ने शुभोपयोग 10वें गुणस्थान तक माना है। तथा मोह का अभाव होने पर 11-12वें गुणस्थान में शुद्धोपयोग माना है।

(स) जिण-पूजा वंदणणमंसणेहिय बहुकम्मपरदेसनिज्जरूवल-भ्भवादो। (धवल पुस्तक 10/289)

अर्थ- जिन पूजा, वंदन, एवं नमस्कार से बहुत कर्मों की निर्जरा होती है।

(द) 'अरहंत णमोकारो संपहिय बंधादो असंखेज्जगुण कम्मक्खयकारओति।' (श्रीजय धवल 1/9)

अर्थ- अरहंत भगवान को नमस्कार करने से तात्कालिक बंध की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा होती है।

(ई) जिणबिंबदंसणेण, णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादि कम्मकलावस्य खयदंसणादो॥ धवल 6/427॥

अर्थ - जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्त निकाचित मिथ्यात्वादि कर्म समूह को नष्ट होते हुए देखा जाता है।

(फ) जह्मधणसंधाया खणेण पवहणहया विलिज्जंति।
ज्झाणप्पवणोवह्या तह कम्मधणा विलिज्जंति (ध्यान शतक)

अर्थ- जैसे मेघपटल पवन से ताड़ित होकर क्षण मात्र में विलीन हो जाता है, वैसे ही धर्मध्यानरूपी पवन से उपहद होकर कर्मरूपी बादल भी विलीन हो जाते हैं।

उपर्युक्त सभी प्रमाण श्री धवल महाशास्त्र के है। पंडित जवाहरलाल जी भिन्डर वाले लिखते हैं कि 'संसार में श्री धवल जी से बड़ा कोई ग्रंथ नहीं है।' अतः उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि शुभोपयोग से आस्रव तो होता ही है, निर्जरा भी होती है।

तत्वार्थसूत्र अध्याय 9/45 में आचार्य उमास्वामी लिखते हैं कि सम्यक्दृष्टि श्रावक...। इसके अनुसार पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक के तथा 6वें गुणस्थानवर्ती मुनि के प्रतिसमय असंख्यात गुणी निर्जरा होती है। सभी आचार्यों ने एकमत होकर यह माना है, कि पांचवें और छठवें गुणस्थान में शुभोपयोग होता है, शुद्धोपयोग नहीं। तब यह प्रश्न उठाना स्वाभाविक है, कि पाँचवें-छठवें गुणस्थान में होने वाली प्रति समय की असंख्यात गुणी निर्जरा शुभोपयोग से होती है या शुद्धोपयोग से? उत्तर होगा शुभोपयोग से। क्योंकि वहाँ शुद्धोपयोग होता ही नहीं। स्वयं पंडित टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशक अध्यय 7 में लिखते हैं- 'देखो चुतर्थ गुणस्थान वाला शास्त्राभ्यास आत्मध्यान चिन्तन आदि कार्य करे, तब भी निर्जरा नहीं, बंध घना है। अर पंचम गुणस्थान वाला विषय सेवन आदि कार्य करे तहाँ भी बाकै गुण श्रेणी निर्जरा हुआ करे, बंध भी थोरा होवे। इससे सिद्ध है कि पंडित टोडरमलजी भी पंचम गुणस्थान में शुभोपयोग से असंख्यात गुणी निर्जरा मानते हैं। अतः शुभोपयोग से मात्र शुभास्रव की मान्यता आगमबाध्य है। शुभोपयोग से आस्रव तथा निर्जरा दोनों मानने चाहिए।

1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002, उ.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन संस्कृति एवं साहित्य के विकास में कर्नाटक का योगदान

प्रो. डॉ. राजाराम जैन

जब मैं प्राच्यकालीन जैन इतिहास एवं संस्कृति पर विचार करता हूँ, तो सोचता हूँ कि यदि ई.पू. चौथी सदी के मध्यकाल में मगध के द्वादशवर्षीय भीषण दुष्काल के समय आचार्य भद्रबाहु ने दक्षिण भारत में ससंघ विहार न किया होता, तो जैनधर्म का इतिहास सम्भवतः वैसा न बन पाता, जैसा कि आज उपलब्ध है।

धन्य है वे आचार्य भद्रबाहु, जिन्होंने दुष्काल की भीषणता तथा दिगम्बरत्व की हानि का विचार कर मगध से दक्षिण-भारत की ओर विहार किया। यद्यपि हमारा इतिहास इस विषय पर मौन है कि उनके विहार का मार्ग कहाँ-कहाँ से होकर रहा होगा? वस्तुतः यह स्वतंत्र रूप से एक गहन विचारणीय विषय है, किन्तु मेरी दृष्टि से वे, पाटलिपुत्र से विहार कर वर्तमानकालीन उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात एवं महाराष्ट्र होते हुए कर्नाटक के कटवप्र नाम के एक निर्जन वन में पधारे होंगे। चूँकि भद्रबाहु के जीवन का वह अंतिम चरण था, अतः उन्होंने अपने वरिष्ठ शिष्य आचार्य विशाख को गणाधिपति घोषित कर उन्हें दिगम्बरत्व की सुरक्षा तथा जैनधर्म के प्रचार-प्रसार के लिये ससंघ दक्षिण के सीमान्त तक अर्थात् तत्कालीन पाण्ड्य, चेर, चोल एवं ताम्रपर्णी के राज्यों में विहार करने का आदेश दिया। यह तथ्य है कि आचार्य विशाख के ससंघ विहार करने के बाद आचार्य भद्रबाहु ने अपने अंतिम समय में स्वयं एकान्तवास कर सल्लेखना धारण करने का निर्णय किया था, किन्तु नवदीक्षित मुनिराज चन्द्रगुप्त अपनी भक्ति के अतिरेक के कारण आचार्य भद्रबाहु की वैयावृत्ति हेतु उन्हीं की सेवा में उनके पास रह गये थे।

यह वह काल है, जब भारत में लेखन की परम्परा प्रचलित न थी। गुरु-शिष्य द्वारा कण्ठ-परम्परा से श्रुतागमों का स्मरण रखा जाना ही पर्याप्त था। इसी कारण स्वाध्याय, चिन्तन-मनन एवं प्रवचनों से श्रुतज्ञान की परम्परा अगली पीढ़ियों के लिये कुछ वर्षों तक निःसृत होती रही।

यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आचार्य भद्रबाहु ने प्राकृतिक विपत्तिकाल में दिगम्बरत्व की सुरक्षा के लिये दक्षिण भारत ही क्यों चुना? वे अन्यत्र क्यों नहीं गये? मेरा जहाँ तक अध्ययन है, जैन-साहित्य में एतद्विषयक उसके साक्ष्य-सन्दर्भ अनुपलब्ध हैं।

बौद्धों के इतिहास-ग्रंथो- 'महावंश' में (जिसका रचनाकाल सन् 461-479 है), ई.पू. 543 से ई.पू. 301 तक के सिंहल देश के इतिहास का वर्णन किया गया है। उसमें ई.पू. 467 की सिंहल (वर्तमान श्रीलंका) की राजधानी अनुराधापुरा के वर्णन-क्रम में बतलाया गया है कि वहाँ के अनेक गगनचुंबी भवनों में से एक भवन, तत्कालीन राजा पाण्डुकाभय ने वहाँ विचरण करने वाले अनेक निर्ग्रन्थों के लिये बनावाकर उन्हें भी समर्पित किया था।[1]

महावंश के उक्त संदर्भ से यह स्पष्ट है कि ई.पू. 5वीं सदी में सिंहल देश में निर्ग्रन्थ धर्म अर्थात् जैनधर्म का अच्छा प्रचार था और कुछ चिन्तक-विद्वानों का यह कथन तर्कसंगत भी लगता है कि कर्नाटक, आन्ध्र, तमिल एवं केरल होता हुआ ही जैन धर्म सिंहल में प्रविष्ट हुआ होगा। तमिल-जनपद के मदुराई और रामनाड् में ब्राह्मी-लिपि में महत्त्वपूर्ण कुछ प्राचीन प्राकृत-शिलालेख उपलब्ध हुए हैं। उन्हीं के समीप जैन मंदिरों के अवशेष तथा तीन-तीन छत्रों से विभूषित अनेक पार्श्वमूर्तियाँ भी मिली हैं। इन प्रमाणों के आधार पर सुप्रसिद्ध पुराविद् डॉ. सी.एन. राव का कथन है कि - 'ई.पू. चतुर्थ सदी में जैनधर्म ने तमिल के साथ-साथ सिंहल को भी विशेष रूप से प्रभावित किया था।' उनके कथन का एक आधार यह भी है कि - "सिंहल देश में उपलब्ध गुहालेखों की अक्षर-शैली और तमिलनाडु के पूर्वोक्त ब्राह्मी-लेखों के अक्षरों में पर्याप्त समानता है।"[2]

तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर तिरुवल्लुवर कृत 'कुरल-काव्य' और व्याकरण ग्रन्थ 'तोलकप्पियम्' जैसे तमिल के गौरवग्रन्थों पर जैनधर्म का पूर्ण प्रभाव है। इस कारण इतिहासज्ञ विद्वानों की यह मान्यता है कि वैदिक अथवा ब्राह्मण धर्म के प्रभाव के पदार्पण के पूर्व ही तमिल-प्रान्त में जैनधर्म का प्रवेश हो चुका था। कुछ विद्वानों की यह भी मान्यता है कि तमिल के शास्त्रीय कोटि के आद्य महाकाव्यों में से एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'नालडियार' में उन आठ सहस्र जैनमुनियों की रचनाएँ ग्रथित हैं, जो पाण्ड्य नरेश की इच्छा के विरुद्ध पाण्ड्य-देश छोड़कर अन्यत्र विहार करने जा रहे थे। यह ग्रन्थ तत्कालीन पाण्ड्य-देश में लिखा गया था।[3]

कलिंग के चक्रवर्ती जैन-सम्राट खारवेल ने अपने हाथीगुम्फा शिलालेख में लिखा है कि 'मगध-नरेश नन्द 300 वर्ष पूर्व कलिंग से जिस 'कलिंग-जिन' को छीनकर मगध में ले गये थे, उसे मैंने उनसे वापिस लाकर कलिंग में पुनः स्थापित कर दिया है।'[4] खारवेल का समय ई.पू. दूसरी सदी का मध्यकाल है। इस तथ्य का गहन अध्ययन कर डॉ. के.पी. जायसवाल ने लिखा है कि 'कलिंग (वर्तमान उड़ीसा) में जैनधर्म का प्रवेश शिशुनाग वंशी राजा नन्दिवर्धन के समय में हो चुका था। खारवेल के समय के पूर्व भी उदयगिरि (कलिंग) पर्वत पर अरिहन्तों के मंदिर थे, क्योंकि उनका उल्लेख खारवेल के शिलालेख में हुआ है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट विदित होता है कि खारवेल के पूर्व भी कई शताब्दियों तक जैनधर्म कलिंग का राष्ट्र-धर्म रहा था।'[5] उनके इस कथन से प्रतीत होता है कि तीर्थंकरों की सिद्ध एवं अनेक तीर्थंकरों की जन्मभूमि बिहार से यह जैनधर्म बंगाल, कलिंग, आन्ध्र, तमिल एवं केरल होता हुआ सिंहल देश तक पहुँचा होगा।

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व में इतिहास-लेखन की परम्परा न थी, इस कारण साक्ष्यों के अभाव में यह ज्ञात न हो सका कि सुदूर-दक्षिण में उसका प्रचार-प्रसार करने में आचार्य भद्रबाहु से भी पूर्व किन-किन मुनि-आचार्यों का योगदान रहा होगा?

आचार्य भद्रबाहु को इसकी जानकारी रही होगी। यही कारण है कि मगध के द्वादशवर्षीय भीषण दुष्काल के समय उन्होंने ससंघ दक्षिण भारत की यात्रा ही उपयुक्त समझी। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है, उनकी इस यात्रा में उनके जाने का मार्ग कहाँ-कहाँ से रहा होगा तथा कितने महीनों में उन्होंने इस यात्रा को तय किया होगा, दुर्भाग्य से इसकी जानकारी अभी तक नहीं मिल सकी है। महाकवि कालिदास के विरही यक्ष ने जिस मेघ को अपना दूत बनाकर अपनी विरहिणी यक्षिणी की खोज के लिये भेजा था, उसके जाने के आकाश-मार्ग तक का पता विद्वानों ने लगा लिया, किन्तु यह एक दुखद प्रसंग है कि आचार्य भद्रबाहु की दक्षिण-यात्रा के स्थल-मार्ग तक का पता विद्वान् लोग अभी तक नहीं लगा सके हैं और न ही किसी का ध्यान भी उस ओर जा रहा है।

हाथीगुम्फा-शिलालेख के अनुसार सम्राट खारवेल (ई.पू. द्वितीय सदी) ने अपनी दिग्विजय के प्रसंग में दक्षिणापथ के कई राज्यों पर विजय प्राप्त की थी। यद्यपि उस समय के भूगोल की राजनैतिक सीमा रेखाएँ स्पष्ट नहीं हैं, किन्तु खारवेल-शिलालेख में जिस दक्षिणापथ पर विजय प्राप्त करने की बात कही गई है, उसमें वे ही देश आते हैं, जिन्हें वर्तमान में भूगोल-शास्त्रियों ने आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिल, केरल एवं सिंहल (श्रीलंका) देश कहा है। खारवेल के शिलालेख में जो एक विशेष बात कही गई है वह यह कि, उसने (खारवेल ने) अपनी दिग्विजय के क्रम में दक्षिणापथ के 1300 वर्षों से चले आये एक जबर्दस्त संघात का भी भेद कर दिया था।[6] इस संघात अथवा महासंघ में तत्कालीन सुप्रसिद्ध राज्य-चोल, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र तथा ताम्रपर्णी (सिंहल) के राज्य सम्मिलित थे तथा यह महासंघ 'तमिल-संघात' (United states of Tamil) के नाम से प्रसिद्ध था।[7]

मेरी दृष्टि से खारवेल का यह आक्रमण केवल राजनैतिक ही नहीं था, बल्कि जैनधर्म के विरोधियों ने जैनधर्म के प्रचार-प्रसार में उक्त तमिल-महासंघ के माध्यम से जो कुछ गतिरोध उत्पन्न कर दिये थे, खारवेल ने उनसे क्रोधित होकर उस महासंघ को कठोर सबक सिखाया और उन संघीय राज्यों में जैनधर्म को यथावत् विकसित एवं प्रचारित होने का पुनः अवसर प्रदान किया। उसी का सुफल है कि तमिल एवं कर्नाटक ने आगे चलकर जैनधर्म की जो बहुमुखी सेवा की, वह जैन इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय बन गया। इन प्रान्तों का प्रारंभिक जैन साहित्य एक ओर जहाँ स्थानीय बोलियों में लिखित साहित्य का मुकुटमणि माना गया, वहीं वह (साहित्य) कन्नड़ जैनकवियों द्वारा लिखित चतुर्विध अनुयोग साहित्य का भी सिरमौर माना गया। साहित्य के इतिहासकारों की मान्यता है कि प्रारंभिक तमिल एवं कन्नड़ बोलियों को आद्यकालीन जैन-लेखकों ने ही काव्य-भाषा के योग्य बनने का सामर्थ्य प्रदान किया है। इस प्रकार सम्राट खारवेल द्वारा स्थापित उक्त परम्परा कर्नाटक में 10वीं-11वीं सदी तक अन्तर्वर्त्ती जल-स्रोतों के प्रवाह के समान अबाध गति से चलती रही।

यह भी विचारणीय है कि खारवेल ने कलिंग में जो विराट जैन सम्मेलन बुलाया था,[8] क्या वह 'तमिरदेह संघात'[9] के द्वारा की गई जैनधर्म के ह्रास एवं जैनागमों की क्षतिपूर्ति के विषय में विचारार्थ तथा आगे के लिये योजना-बद्ध सुरक्षात्मक एवं विकासात्मक कार्यक्रमों के संचालन की दृष्टि से तो आयोजित नहीं था? अन्यथा, वह देश के कोने-कोने से, सभी दिशाओं से लाखों की संख्या (सत सहसानि) में महातपस्वी मुनि-आचार्यों से पधारने का अनुरोध कर उनका सम्मेलन क्यों करता? तथा उनसे उसमें मौर्यकाल में उच्छिन्न 'चोयट्ठि'[10] (द्वादशांग-वाणी) का वाचन-प्रवचन करने का सादर निवेदन क्यों करता? यह यक्ष-प्रश्न गम्भीरता पूर्वक विचार करने का है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि कर्नाटक सहित दक्षिण भारत में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार का काल और अधिक नहीं, तो कम से कम (150+1300 = 1450) ई. पू. अथवा तीर्थंकर पार्श्व से भी पूर्वकालीन रहा होगा।

दक्षिणापथ में आक्रमण के प्रसंग में खारवेल ने कर्नाटक एवं वनवासी प्रदेश के राजाओं पर आक्रमण कर उन्हें भी अपने अधिकार में कर लिया था और वहाँ भी उसने अपनी विचारधारा की अमिट छाप छोड़ी थी। सम्भवतः यह उसी का दीर्घगामी प्रेरक प्रभाव रहा कि परवर्ती युगों में वहाँ के कदम्ब, गंग, होयसल, पाण्ड्य, चोल, पल्लव, रट्ट, सांतर, चालुक्य एवं राष्ट्रकूट आदि राजवंश या तो परम्परया जैनधर्मानुयायी रहे अथवा उसके परमहितैषी बनकर उन्होंने उसके साधक आचार्यों एवं शिल्पकारों को सुविधा-सम्पन्न आश्रयस्थल दिये और भक्तिपूर्वक उन्हें लेखन-सुविधाएँ भी प्रदान कीं। फलतः वहाँ के सार्थक मनीषियों ने भी तमिल, कन्नड़, संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में उच्चस्तरीय विविध विधाओं एवं विषयों का विभिन्न शैलियों में शास्त्रीय एवं लौकिक विपुल साहित्य का प्रणयन किया। ऐसे महामहिम आचार्यों की शृंखला बड़ी ही विस्तृत है, जिसमें से-

शौरसेनी प्राकृत में आचार्य कुन्दकुन्द (ई.पू. प्रथम सदी के लगभग), स्वामी कार्तिकेय (तीसरी सदी के लगभग), आचार्य नेमिचन्द्र (10वीं सदी ई.) एवं वसुनन्दि (12वीं सदी पूर्वार्ध), संस्कृत में आचार्य उमास्वामी (दूसरी सदी), देवनन्दि पूज्यपाद (5वीं सदी), भट्ट अकलंक (745-756 ई.) रविषेण (8वीं सदी), स्वामी वीरसेन (सन् 816 ई.), जिनसेन (8वीं सदी), गणितज्ञ महावीराचार्य (8वीं सदी), गुणभद्र (9वीं सदी), सोमदेव सूरि (10वीं सदी), आचार्य विद्यानन्दि (10वीं सदी), प्रभाचन्द्राचार्य (10वीं सदी), श्रीधराचार्य ज्योतिषी (10वीं सदी), आयुर्वेदज्ञ आचार्य उग्रादित्य (10वीं सदी), इतिहासकार वादिराज सूरि (11वीं सदी), मल्लिषेण सूरि (11वीं सदी) इतिहासज्ञ आचार्य-प्रवर-इन्द्रनन्दि (12वीं सदी), मुनिचन्द्र देव (13 वीं सदी), अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू (7वीं सदी), पुष्पदन्त (10वीं सदी एवं (धवल 11वीं सदी), कन्नड़ के आद्य चम्पूकार आदि-पम्प (947 ई.), काव्य-सुधा-धारा को प्रवाहित करने वाले रत्न (949 ई.), माइथो-हिस्टोरियन-पोन्न (950 ई.), चामुण्डराय (978 ई.), दिवाकर नन्दी (1062 ई.), शान्तिनाथ (1068 ई.), कविनागचन्द्र (अभिनव पम्प, नागवर्मा द्वितीय, लगभग 1100 ई.), महान् कवियित्री कन्ती (लगभग 1100 ई.), राजादित्य (सन् 1100 ई.), नयसेन (सन् 1112 ई.), कीर्तिवर्मा (सन् 1125 ई.), ब्रह्मशिव (लगभग 1125 ई.), कर्णपार्य (सन् 1140 ई.), नागचन्द्र कवि (सन् 1145 ई.), नेमिचन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(सन् 1170 ई.), एरडनेय नागवर्मा (द्वितीय 12वीं सदी), सोमनाथ (1150 ई.), वृत्तविलास (सन् 1160 ई.), कवि बालचन्द्र (1170 ई.), वोप्पण (1180ई.) कोप्पण, अग्गल (1189 ई.) आचण्ण (1195 ई.), बन्धुवर्मा (सन् 1200 ई.), पार्श्व पंडित (1205 ई.), जनन (1209 ई.), गुणवर्मा द्वितीय (1235 ई.), कमलनव (1235 ई.), महाबल (सन् 1254 ई.), पार्श्व पंडित (1205 ई.), जन्न (1209 ई.), गुणवर्मा द्वितीय (1235 ई.), कमलनव (1235 ई.), महाबल (सन् 1254 ई.), कवि बालचन्द्र (1170ई.), बाहुबलि पण्डित (1340 ई.), षट्पदिसाहित्यकार रत्नाकर वर्णी (1557 ई.), महान सांगत्य साहित्यकार चन्द्रम् (1605 ई.), पद्मनाभ (1680 ई.), प्रभृति आचार्य लेखक प्रमुख हैं और जिन्होंने शाश्वत कोटि के उच्चस्तरीय ऐसे साहित्य की रचना की, जो आज भी इतिहासकारों, लेखकों, समीक्षकों, भाषा-विज्ञानियों एवं दार्शनिकों के लिये न केवल प्रकाश-स्तम्भ हैं अपितु प्राच्य भारतीय-विद्या के गौरव के स्वर्णिम अग्रशिखर भी माने गये हैं। वीर वेनेय, सेनापति चामुण्डराय, महामंत्री भरत एवं नन्न आदि जैन वीरों तथा कर्नाटक की नेक आदर्श जागृत महिलाओं में महासति अत्तिमब्बे, जक्कयव्वे, पामव्वे, पम्पादेवी आदि को पराक्रमी, राष्ट्रवादी एव जिनवाणी भक्त बनाने तथा सामाजिक सुधारों में उन्हें अग्रणी बनाने में कर्नाटक की पुण्यभागा तीर्थरूपा पृथिवी तो है ही, परोक्ष रूप से सम्राट खारवेल द्वारा स्थापित उसकी दूर दृष्टि सम्पन्न सांस्कृतिक चेतना की प्रभावक वेगवती प्रच्छन्न प्रवाहित धारा ही प्रतीत होती है।

संदर्भग्रन्थ सूची -

1. महावंश - 10/97-1000
2. Studies in South Indian Jainism and Jain Epigraphs, P.29
3. दक्षिण भारत में जैन धर्म, पृष्ठ 4
4. हाथी गुम्फा-शिलालेख, पृष्ठ सं. 11
5. ना.प्र. पत्रिका अंक8/3, सन् 1928
6. दे. हाथीगुम्फा-शिलालेख, पृ.सं. 10
7. दे. उड़ीसा रिव्यू., दिस. 1998, पृ. 14
8. दे. हाथीगुम्फा - शिलालेख, पृ.स. 16
9. दे. वही., पृ.स. 11.
10. वही., पृ.स. 16.

आर्यिका नवधा भक्ति विवाद नहीं, चर्चा

पं. मूलचन्द लुहाड़िया

जैन जगत के प्रसिद्ध विद्वान पं. शिवचरण लाल जी मैनपुरी का एक लघु लेख जैन पत्रिकाओं में छपा है 'आर्यिका नवधा भक्ति : विवाद से विराम अभीष्ट' पढ़कर आश्चर्य भी हुआ और खेद भी। प.पू. आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा रचित 'जयोदय' ग्रंथ के एक श्लोक का असमीचीन अर्थ करते हुए उक्त कथन को अंतिम निर्णय के रूप में स्वीकार करने की प्रेरणा देते हुए वे विवाद का विराम चाहते हैं।

पहली बात तो यह है कि श्लोक में गृहस्थों द्वारा यतियों/मुनियों को नवधा भक्ति पूर्वक दान का प्रसंग है। उसमें मूल में तो यतियों को भोजन, उपकरण, औषदि शास्त्र आदि श्रद्धा पूर्वक एवं नवधा भक्तिपूर्वक दान देने की बात लिखी है। स्वोपज्ञ टीका में उपकरण के विशेणार्थ में वस्त्र पात्रादि उपकरण लिखा है। यतियों को शास्त्र की सुरक्षा के लिये वस्त्र उपकरण के रूप में ग्राह्य हो सकता है, किन्तु यहाँ आर्यिकाओं का तो प्रसंग ही नहीं हैं। इसके अतिरिक्त आर्यिकाओं को वस्त्र उपकरण के रूप में दिया भी नहीं जाता। वे वस्त्र परिग्रह के रूप में ग्रहण करती हैं। उपकरण को परिग्रह नहीं कहा जाता, मुनि भी संयम की रक्षा एवं शास्त्र सुरक्षा हेतु वस्त्र उपकरण के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। वहीं वस्त्र आदि शरीर को ढकने के लिये प्रयोग करने लगें तो वह उनका परिग्रह हो जायेगा। अतः मुनियों के लिये वस्त्रोपकरण दान करने के उल्लेख को आर्यिकाओं की नवधाभक्ति का विधान परक निराधार अर्थ निकालने का द्राविड़ी व्यायाम पंडितजी ने किया है जो आश्चर्य कारक है।

दूसरी बात यह है कि आर्यिका नवधा भक्ति जैसी चर्चा को समाज में कलह एवं विद्वेष के वातावरण की जनक के रूप में क्यों देखा जा रहा है? ये तो धार्मिक चर्चाएँ है जो सदा से होती आई है और आगे भी होती रहनी चाहिए। क्या आप चाहते है कि किसी बिन्दु पर मतभेद होने पर प्रेम भाव से उस पर चर्चाएँ न हो? अन्यथा तो एक दूसरे के विचारों का परस्पर आदान प्रदान ही नहीं हो पाएगा और जन साधारण को समाधान प्राप्त करने का मार्ग ही बंद हो जायेगा तथापि यह आवश्यक है कि ऐसी चर्चाएँ कभी विवाद का रूप नहीं लेवें। अपना पूर्वाग्रह छोड़कर निष्कषाय भाव से समाधान प्राप्ति के सदुद्देश्य से की जानी वाली चर्चाएँ कभी विवाद नहीं बन सकती। विवाद तो द्वेष और अहंकार की भूमि पर उत्पन्न होता है और उस अंकुरित विवाद को यदि पूर्वाग्रह का खाद पानी मिल जाये तो धीरे-धीरे वह पुष्ट पौधे और फिर वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। क्या हम निष्कषाय भाव से धार्मिक विषयों पर परस्पर वात्सल्य भाव रखते हुए शालीन शब्दों के प्रयोग के साथ चर्चा करने के अभ्यासी नहीं बन सकते?

यदि कदाचित इस चर्चा को आप विवाद मानते भी हैं तो आपके द्वारा दिये गये असमीचीन श्लोकार्थ से तो विवाद खडा हो रहा है। उस तथाकथित विवाद का यदि तात्कालिक विराम किया जा सकता है तो वह यह कि इस तरह की जहाँ जिस संघ में जैसी परंपरा चल रही हो वैसी चलती रहे और कोई किसी को अपनी मान्यता मनवाने के लिये किसी प्रकार बाध्य नहीं करे, न एकदूसरे के प्रति व्यंगात्मक, निंदात्मक शब्दों का प्रयोग ही करे। साथ ही वीतराग भाव से समाधान कारक चर्चाएँ भी चलती रहे किन्तु मतभेद को कभी भी मनभेद का कारण नहीं बनने दिया जाए।

मदनगंज-किशनगढ़, जिला-अजमेर (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन संस्कृति एवं साहित्य का मुकुटमणि कर्नाटक और उसकी कुछ ऐतिहासिक श्राविकाएँ

प्रो. (डॉ.) श्रीमती विद्यावती जैन

गतांक में कर्नाटक की ऐतिहासिक श्राविकाओं के अंतर्गत विदुषी कवियित्री कन्ती देवी एवं दानचिन्तामणि अत्तिमव्वे के यशस्वी जीवन पर प्रकाश डाला गया था। प्रस्तुत अंक में अन्य तीन प्राचीन श्राविकाओं की स्वर्णिम कीर्तिगाथा प्रस्तुत है।

दृढ़ संकल्पी माता कालल देवी

कर्नाटक को दक्षिणांचल की अतिशय तीर्थभूमि के निर्माण का श्रेय जिन यशस्विनी महिमामयी महिलाओं को दिया गया है, उनमें प्रातः स्मरणीया तीर्थस्वरूपा माता कालल देवी (10वीं सदी) का स्थान सर्वोपरि है। यह वह नारी है, जिसने पूर्वजन्म में सुकर्म किये थे और फलस्वरूप वीर पराक्रमी सेनापति चामुण्डराय जैसे देवोपम श्रावकशिरोमणि पुत्ररत्न की माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त किया था।

वह प्रतिदिन शास्त्र स्वाध्याय के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ थी। उसने एक दिन आचार्य अजितसेन के द्वारा आदिपुराण में वर्णित पोदनपुराधीश बाहुबलि की 525 धनुष उत्तुंग हरित्वर्णीय पन्ना की भव्य मूर्ति का वर्णन सुना और भावविभोर हो उठी। इसकी चर्चा उसने अपने आज्ञाकारी पुत्र से की और उसके दर्शनों की इच्छा व्यक्त की तो वह अपने हजार कार्य छोड़कर अपनी माता की मनोभिलाषा पूर्ण करने हेतु अपने गुरुदेव सि.च. नेमिचन्द्र के साथ उस मूर्ति का दर्शन करने के लिये तक्षशिला के पास पोदनपुर की यात्रा के लिये निकल पड़ा।

यात्रा काफी लम्बी थी। चलते-चलते वे सभी कटवप्र के बीहड़वन में रात्रि-विश्राम के लिये विरमित हो गये। रात्रि के अंतिम प्रहर में उन तीनों ने एक सदृश स्वप्न में देखा कि एक देवी उन्हें कह रही है कि 'जहाँ तुम लोग विश्राम कर रहे हो, उसी के सामने वाली पहाड़ी के शिखराग्र पर एक अभिमंत्रित शरसन्धान करो। वहीं से तुम्हें बाहुबलि के दर्शन हो जायेंगे।' प्रातःकाल होते ही धनुर्धारी चामुण्डराय ने शैल-शिला पर णमोकार-मन्त्र का उच्चारण कर शर-सन्धान किया और ऐसी अनुश्रुति है कि बाण के लगते ही पत्थर की परतें टूटकर गिरीं और उसमें से गोम्मटेश का शीर्षभाग स्पष्ट दिखाई देने लगा।

धन्य है, वह माता कालल देवी, जिसके दृढ़ संकल्प और महती प्रेरणा से विश्व-विश्रुत, रूप-शिल्प और मूर्ति-विज्ञान की अद्वितीय कलाकृति को वीर सेनापति चामुण्डराय ने निर्मापित कराया। उस सौम्य, सुडौल, आकर्षक एवं भव्य-मूर्ति को देखकर केवल जिनभक्त ही नहीं, सारा विश्व ही अभिभूत है तथा उसका दर्शन कर अतिशय भव्यता एवं सौन्दर्य पर आश्चर्यचकित रह जाता है। इसे विश्व का आठवाँ आश्चर्य माना गया है।

धर्म परायणा अजितादेवी

पूर्वजन्म के सुसंस्कारों के साथ-साथ महिला में यदि धर्मपरायणता एवं पतिपरायणता का मिश्रण हो जाये, तो महिला के जिस अन्तर्बाह्य शील-सौंदर्य समन्वित व्यक्तित्व का विकास होता है, उसी का चरम विकसित रूप था अजितादेवी (10वीं सदी) का।

वह गंग नरेश के महामंत्री एवं प्रधान सेनापति वीरवर चामुण्डराय की धर्मपत्नी थी। वह जितनी पतिपरायणा थी, उतनी ही धर्मपरायणा भी। उसके पति चामुण्डराय जब-जब प्रजाहित अथवा राष्ट्ररक्षा के कार्यों से बाहर रहते थे, तब उनके आंतरिक कार्यों की निगरानी की जिम्मेदारी उन्हीं की रहती थी।

कहते हैं कि जिस समय शिल्पि-सम्राट अरिहनेमि अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर अहर्निश गोम्मटेश की मूर्ति के निर्माण में संलग्न था, तो अजितादेवी उसकी सुविधाओं का बड़ा ध्यान रखती थी। जब तक उस मूर्ति का निर्माण-कार्य पूर्ण सम्पन्न नहीं हुआ, तब तक वह स्वयं भी उस कार्य की समाप्ति पर्यन्त व्रताचरण, तप एवं स्वाध्याय पूर्वक दिन व्यतीत करती रही और जब मूर्ति-निर्माण का कार्य पूर्ण हुआ, तो भक्ति-विभोर होकर उसने सर्व-प्रथम देवालय-परिसर स्वयं साफ किया, धोया-पौंछा और देव-दर्शन कर अरिहनेमि तथा उसके परिवार के प्रति आभार व्यक्त किया और अपनी सासु-माता के पास जाकर गद्गद वाणी में हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से उन्हें उसकी सुखद सूचना दी।

भक्त गुल्लिकाज्जयी

निष्काम भक्ति में कृत्रिम प्रदर्शन नहीं, बल्कि मन की ऋजुता, कष्टसहिष्णुता एवं स्वात्म-सन्तोष की जीवन-वृत्ति परमावश्यक है। वैभव-प्रदर्शन में तो मान-कषाय की भावना का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अन्तर्निहित रहना स्वाभाविक है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, परमश्रेष्ठ गोम्मटेश की मूर्ति के प्रथम महामस्तकाभिषेक के समय की वह घटना, जब वीरवर चामुण्डराय ने केशर-युक्त शुद्ध दुग्ध के घड़ों के घड़े गोम्मटेश के महामस्तक पर उड़ेल दिये किन्तु वह उनकी कमर से नीचे तक न आ सका। पंडित, महापण्डित, साधु, मुनि, आचार्य, उपस्थित राजागण सभी आश्चर्यचकित। अनेक उपाय किये गए कि महामस्तकाभिषेक सर्वांगीण हो, किन्तु सभी प्रयत्न असफल एवं सभी लोग निराश एवं उदास। अब क्या हो? किसी की भी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर शुभ-कार्य में यह विघ्न क्यों? यह कष्टदायी उपसर्ग क्यों?

सभी की घोर मंत्रणा हुई। देर तक आकुल-व्याकुल होते हुए यह निर्णय किया गया कि आज उपस्थित सभी भव्यजनों को अभिषेक का अवसर प्रदान किया जाए। जो भी चाहे, मंच पर आकर महामस्तकाभिषेक कर ले।

भीड़ में सबसे पीछे सामान्य धूमिल वस्त्र धारण किये हुए एक दरिद्र वृद्धा, जो बड़ी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उमंग के साथ अभिषेक करने आई थी किन्तु भीड़ देखकर वह पीछे ही रह गई थी, उस घोषणा से उसे भी अभिषेक का सुअवसर मिल गया। उसके पास मूल्यवान धातु का घड़ा नहीं, नारियल की नरेटी मात्र थी। टिरकते-टिरकते मंच पर पहुँची और निष्काम भक्ति के आवेश में भरकर जैसे ही उसने नरेटी के नारिकेल-जल से परम आराध्य बाहुबलिदेव का भक्तिभाव से अभिषेक किया, उससे वह मूर्ति आपाद-मस्तक सराबोर हो गई। यह देखकर सर्वत्र जय-जयकार होने लगा। हर्षोन्मत्त होकर नर-नारीगण नृत्य करने लगे।

चामुण्डराय ने उसी समय अपनी गलती का अनुभव किया और सोचने लगा कि सचमुच ही मुझे, सुन्दरतम मूर्ति-निर्माण तथा उसके महामस्तकाभिषेक में अग्रगामी रहने तथा कल्पनातीत सम्मान मिलने के कारण अभिमान हो गया था। उसी का यह फल है कि सबके आगे आज मुझे अपमानित होना पड़ा है। इतिहास में इस घटना की चर्चा अवश्य आयेगी और मेरे इस अहंकार को भावी पीढ़ी अवश्य कोसेगी। चामुण्डराय का अहंकार विगलित हो गया। वह माता गुल्लिकाज्जयी (10वीं सदी) के पास गया। विनम्र भाव से उसके चरण स्पर्श किये, उसकी बड़ी सराहना की और उसकी यशोगाथा को स्थायी बनाये रखने के लिये उसने आँगन के बाहर, गोम्मटेश के ठीक सामने उसकी मूर्ति स्थापित करा दी। यहीं नहीं गोम्मटेश की मूर्ति के दर्शनों के लिये जाने लगते हैं तब प्रारंभ में ही जो प्रवेशद्वार बनवाया गया, उसका नामकरण भी उसी भक्त महिला की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये नाम रखा गया 'गुल्लिकाज्जयी बागुल' अर्थात् बेंगनबाई का दरवाजा।

उस दिन चामुण्डराय ने प्रथम बार यह अनुभव किया कि प्रचुर मात्रा में धन-व्यय, अटूट वैभव एवं सम्प्रभुता के कारण उत्पन्न अहंकार के साथ महामस्तकाभिषेक के लिये प्रयुक्त स्वर्णकलश भी, सहज स्वाभाविक निष्काम भक्तियुक्त एक नरेटी भर नारिकेल-जल के सम्मुख तुच्छ है। यह भी अनुश्रुति है कि वह गुल्लिकाज्जयी महिला, महिला नहीं बल्कि उस रूप में कुष्माण्डिनी देवी ही चामुण्डराय की परीक्षा लेने और निरहंकारी बनने की सीख देने के लिये वहाँ आई थी।

महाजन टोली नं. 1
आरा - 802301 (बिहार)

गोलगंज 'अहिंसा स्थली' बना

छिंदवाड़ा। वर्ष 2001 को भगवान महावीर स्वामी की 2600 वीं जन्म जयंती 'अहिंसा वर्ष' के रूप में पूरे विश्व में मनाया जा रहा है। अहिंसा वर्ष में नगर पालिका परिषद् छिंदवाड़ा ने नगर के हृदय स्थली गोलगंज का नामकरण 'अहिंसा स्थली' करने का प्रस्ताव पास किया है। परम पूज्य ऐलक श्री उदारसागर जी महाराज की 14वें दीक्षा दिवस के पावन अवसर पर शाकाहार परिषद्, जबलपुर के अध्यक्ष सुरेश जैन ने धर्म सभा में गोलगंज को 'अहिंसा स्थली' घोषित किये जाने का प्रस्ताव रखा। जिसे सकल जैन समाज ने हर्ष ध्वनी से पारित किया। ऐलक श्री उदारसागर जी एवं क्षुल्लक श्री नयसागर जी महाराज की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से यह कार्य फलीभूत हुआ है।

गोलगंज का मुख्य नाम गोदगंज हैं, जो कि समय के साथ बदलते हुए गोलगंज हो गया। इस क्षेत्र में रहने वाले परिवारों में बच्चे नहीं बचने या नहीं होने के कारण परिवारों को अपने उत्तराधिकारी के लिये बच्चा गोद लेना पड़ता था। गोल घेरे में होने के कारण वर्तमान में यह क्षेत्र गोलगंज कहलाया। गोलगंज का नामकरण अहिंसा स्थली हो जाने से यहाँ शराब (मदिरा), मांस, अंडा, आदि मांसाहारी वस्तुओं की बिक्री पर प्रतिबंध लग गया है।

गोलगंज का नामकरण अहिंसा स्थली हो जाने पर जैन समाज को अति प्रसन्नता हुई। सकल जैन महासभा ने इस कार्य को करने के लिये नगर पालिका परिषद् को साधुवाद एवं धन्यवाद प्रेषित किया। सकल दिगम्बर जैन महासभा, खंडेलवाल समाज, परवार समाज, श्वेतांबर जैन समाज, गुजराती जैन समाज, गोलापूरब समाज, तारण तरण जैन समाज, मुमुक्ष मंडल एवं अन्य जैन संगठनों ने नगर पालिका परिषद् का आभार माना है। सकल दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष धन्यकुमार गोयल ने गोलगंज वासियों से अपील एवं निवेदन किया है कि वे अपने पते में गोलगंज के स्थान पर 'अहिंसा स्थली' लिखना प्रारंभ कर दें।

संजय जैन 'बज'
10, पाटनी कॉम्प्लेक्स, परासिया रोड, छिंदवाड़ा (म.प्र.)

गीत

शहनाई पर गीत कोई अब गाये कैसे

- *अशोक शर्मा*

शहनाई पर गीत कोई अब गाए कैसे
आपस में टकराते दोनों के ऊसूल हैं।
तुम डाली पर फुदक रहे उस चिड़िया जैसे
हम मिट्टी, कागज, चिन्दी की गुड़िया जैसे
तुम हवा पहन कर नील गगन में उड़ने वाले
हम मिट्टी की गंध, जाति से जुड़ने वाले
कोई सांझा स्वप्न नींद में आए कैसे
एक दूसरे की आंखों में हम बबूल है।।।

बंदूकों में अमन-चैन तुम कसने वाले
हम बारूदी छत के नीचे बसने वाले
कहाँ जाए आतंकित हर पल रहने वाले
आस-पास में नाग बसे हैं डसने वाले
समझौते की छोर हाथ में आए कैसे
एक दूसरे को लगते दोनों फिज़ूल है।2।

चला रहे तुम देश झलकती-मगरूरी है
और झेलना इसे हमारी मजबूरी है
अपना-अपना बोझ लगे दोनों को भारी
अपनी-अपनी कैद घुटन भी लगती प्यारी
अंध कूप से बाहर कोई आए कैसे
अपने-अपने घेरे दोनों को कबूल हैं।3।

अभ्युदय निवास, 36, बी मैत्री बिहार, सुपेला, भिलाई-दुर्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यंग्य

तृष्णाकुलः शान्तिविहीनलोकः

शिखर चन्द्र जैन

आदमी को जीने के लिये जो चाहिए, वह मूलतः खेतों में पैदा होता है, अनाज भी, कपास भी। अतः नगरों-महानगरों में बसने अथवा रेलों, बसों, वायुयानों में बेतहाशा भीड़ खड़ी कर देने का कारण आदमी की बुनियादी जरूरतों को पूरा करना तो कतई नहीं लगता। इसके पीछे अवश्य हीकुछ ज्यादा पाने की लालसा नजर आती है।

धन्य हैं वो लोग जो चुपचाप बैठ लेते हैं। चुपचाप रह लेना एक निहायत ही उम्दा आदत है, जो बहुत कम लोगों में पाई जाती है। जो चीज जितनी कम पायी जाती है उसका उतना ही उम्दा होना नैसर्गिक माना जाता है। हीरे का मूल्यांकन इसी सिद्धांत के अंतर्गत किया गया है, वरना है तो वो कोयले की ही जाति का।

कहते हैं कि महानगरों में लोग बड़ी भाग-दौड़ करते हैं। अल-सुबह से लेकर देर रात तक यात्रा ही करते रहते हैं। कभी पैदल, कभी बस में तो कभी ट्रेन से। रास्तों पर तमाम भीड़ ही भीड़ नजर आती है। बिना किसी से कंधा रगड़े एक कदम भी चलना दूभर होता है। जहाँ तक दृष्टि जाती है, समुद्र में उठती लहरों की तरह लोगों के समूह निरंतर आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। लगता है कि महानगरों की जनसंख्या के मामले में जनगणना के आंकड़े सही नहीं होते, क्योंकि मेरे हिसाब से वहाँ लोगों की संख्या अनन्त होती है। विशुद्ध गणितीय अनन्त, जिसमें कुछ जोड़ने-घटाने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

वैसे महानगरों में ही क्यों? अब तो नगरों और कस्बों में भी लोग बेतहाशा भागते नजर आते हैं। कभी, ट्रेन आते समय, किसी नगर की रेल्वे क्रासिंग पर पहुँचें तो पायेंगे कि बंद गेट के दोनों ओर मानो युद्ध पर उतारू दो विरोधी सेनाएँ तैनात हों। केवल गेट खुलने की देर है कि दोनों ओर से लोग टूट पड़ेंगे। ज्यादातर लोग, अपने-अपने वाहन का इंजन चालू रखे, क्लच दबा, गियर लगा, यों तत्पर रहते हैं ज्यों ओलम्पिक की 'हर्डल-रेस' में भाग लेते हुए 'फ्लेग ऑफ' की प्रतीक्षा में हों, अथवा अपने निजी घर में अचानक लग गई आग को बुझाने जा निकले हों। हर व्यक्ति अत्यंत उतावला दिखाई देता है। एकदम अधीर, व्याकुल, तड़फड़ाया हुआ सा!

एक रोज, एक महानगर में, एक बेहद व्यवस्थित ढंग से सुसज्जित, सूट-बूट-ब्रीफकेस धारी व्यक्ति से मैंने पूछा - 'आखिर इतनी भाग-दौड़ क्यों?'

'पापी पेट की खातिर।' उसने फौरन कहा!

मैं विस्मित हो गया। इतने सुसंस्कृत, क्रीमी-लेयर वाले व्यक्ति का, बंदर नचाने वाले मदारी की भाषा में जवाब देना वाकई चौंकाने वाला था। सहसा विश्वास करना कठिन था कि पेट के मामले में सबकी सोच एक जैसी होती है।

'लेकिन पेट की आवश्यकता तो इतनी नहीं होती कि उसे पाप करना पड़े।' मैंने प्रतिवाद करते हुए कहा - 'मूलतः प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त शाकाहार के लिए अभिकल्पित उदर तो बल्कि इस कारण तंग रहता है कि लोग उसके अन्दर न जाने क्या सटर-पटर डालते रहते हैं जिसे पचा पाना उसे सहज नहीं होता और फिर केवल पेट को ही पापी क्यों कहा जाता है? आदमी समग्रता में पापी क्यों नहीं माना जाता?'

'यह मैं नहीं बतला पाऊँगा।' उसने कहा - 'मैं एक प्रबंधन विशेषज्ञ हूँ, जीव विज्ञानी नहीं। मैं तो बस इतना जानता हूँ कि यह भीषण प्रतिस्पर्धा का युग है। इसमें केवल वे ही जीवन के अधिकारी हो पाते हैं जो सर्वथा सक्षम हों। और सर्वांगीण सक्षमता के लिये सतत सक्रियता अनिवार्य है।'

इस तरह कुछ वजनदार शब्द मेरी ओर उछाल कर वे गमन कर गए। जाहिर है, जल्दी में थे, वरना इतनी रोचक-सैद्धांतिक चर्चा छोड़ भला कौन बुद्धिजीवी जाना चाहेगा।

लेकिन मेरी जिज्ञासा यथावत् रही। यह बात मेरे गले इंच-भर भी नहीं उतरी कि जीवित रहने के लिये आदमी को इस कदर बेतहाशा दौड़ना सचमुच जरूरी था। मेरे विचार से, इसके पीछे, निश्चय ही अन्य कारण होंगे जिनका अनुसंधान आवश्यक था। और जैसी कि मेरी आदत है, इसकी जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर लेते हुए मैंने इस संदर्भ में काफी खोज-बीन की है। भिन्न-भिन्न नगरों-महानगरों में नाना प्रकार के लोगों से मिला हूँ। उनके इंटरव्यू लिए हैं। मंतव्य जाने हैं और इस तरह एकत्रित सारी जानकारी एक कम्प्यूटर में डाल कर उसके विश्लेषण की प्रक्रिया में हूँ। अब चूँकि उपलब्ध जानकारी बहुत भारी है, जिसके कि फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्लेषण कर किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने में कुछ ज्यादा ही समय लगने की संभावना है, मेरे विचार से, इस प्रक्रिया में जो मोटी-मोटी बातें सामने आ रही हैं उन्हें यहाँ प्रस्तुत कर देना समीचीन होगा।

पहली बात जो स्पष्ट रूप से उभर कर ऊपर आई है, वह यह कि लोग जो इतनी अधिक यात्रा करते हैं सो केवल इस कारण कि यात्रा के साधन उपलब्ध हैं। यदि ये बाँस नहीं होते तो जाहिर है कि इनसे निर्मित बाँसुरियाँ भी नहीं बजतीं। दरअसल अनवरत भागम-भाग का बीजारोपण तब हुआ था जब अंग्रेजों ने हमारे देश में रेल की पटरियाँ बिछाई थीं। ट्रेनों के चलते ही दूरियाँ इतनी सिमट गईं कि पुणे के लोग, रोज सुबह नौकरी करने मुम्बई जाकर शाम को वापिस आने लगे।

निश्चित ही यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन था क्योंकि इसके पूर्व लोग जब यात्रा पर जाते थे तो यह मानकर चलते थे कि वापिस आना शायद ही संभव हो। अतः तदनुसार वे अपने परिवार से विदा भी ले लेते थे। पर ट्रेनों के चलने तथा कालान्तर में यात्रा के अन्य सुगम साधन अस्तित्व में आ जाने से लोगों की सोच में जबरदस्त बदलाव आया और अधिक से अधिक लोगों में यात्रा करने की आदत पड़ गयी। इस संदर्भ में आज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की हालत यह है कि ट्रेन हो या बस अथवा वायुयान, यात्रा करने वालों की भीड़ सम्हाले नहीं सम्हलती।

पर दूसरी बात, जो कि महानगरों में जनसंख्या के घनत्व से संबंधित है, ज्यादा स्पष्ट नहीं हो सकी है। यद्यपि लोग यह मानते हैं कि शनैः - शनैः महानगरों की हवा में सांस लेना दुष्कर होता जा रहा है, फिर भी लोग चेतने का नाम नहीं ले रहे। भीड़ जो है सो 'बैल को मारने हेतु आमंत्रित करते हुए,' बढ़ती ही जा रही है। यह बात समझ से सर्वथा परे है कि इतनी परेशानियाँ होने के बावजूद लोग महानगर की गसा-पसी में रहने क्यों चले आ रहे हैं? जबकि देश में तमाम खुली जगहें खाली पड़ी हुई हैं जहाँ फैल-फुट्ट होकर बड़े आराम से रहा जा सकता है।

हर्ष का विषय है कि देर से ही सही, पर अब कुछ मनीषियों ने समस्या की गंभीरता को पहचाना है। ज्यादातर मामलों में यात्रा की निरर्थकता को माना है। भाग-दौड़ में निष्प्रयोजनता को स्वीकार किया है। इन सबको दृष्टिगत रखते हुए, समस्या के हल की दिशा में चहल-कदमी आरम्भ की है। सरकार भी इस समस्या से अनभिज्ञ नहीं है। दरअसल इसे संयोग कहा जाये अथवा एक भली-भाँति सोची-समझी नीति कि जिसके अन्तर्गत सरकार ने, कई एक मामलों में पूर्णतः निष्क्रिय रहते हुए, इस समस्या के समाधान में महान् योगदान दिया है। मसलन, पुरानी पड़ गई रेल की पटरियों को बदलने की योजना समय रहते क्रियान्वित न कर तथा सदियों पुराने रेल्वे के पुलों के नवीनीकरण हेतु आवश्यक धन मुहैय्या न कराकर, सरकार ने परोक्ष रूप से ही सही, लोगों को यात्रा करने से निश्चय ही हतोत्साहित किया है। सड़क के मामले में भी सरकारी रुख इतर नहीं रहा है। गड्ढों की बढ़ती हुई संख्या व गहराई के प्रति वर्षों उदासीन रहकर सरकार ने वाहनों की गति न्यूनतम रखवाने का सफल प्रयास किया है।

इसी शृंखला में आम लोगों ने भी जब-जिसकी-जहाँ-जैसी इच्छा हुई, रेल रोको अथवा चक्का जाम अभियान आयोजित कर परिवहन के सभी साधनों की अनित्यता उजागर करने में अपना विनम्र योगदान दिया है। जिन मनीषियों का जिक्र मैंने ऊपर किया है उन्होंने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रदूषण का मुद्दा हाथ में लिया है। अनवरत धुआँ उगलकर हवा में जहर घोल रहे वाहनों के विरुद्ध जनमानस तैय्यार किया है। न्यायालय की शरण में भी पहुँचे हैं और इन सबके फलस्वरूप पर्यावरण के प्रति लोगों में जागरूकता इस कदर बढ़ी है कि नर्सरी के बच्चे वर्णमाला सीखते ही सी.एन.जी., एल.एस.डी. और पी.आई.एल. का उच्चारण धड़ल्ले से करने लगे हैं। प्रायमरी में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को इन शब्दों का फुल फार्म लिखने का होम-वर्क दिया जाने लगा है और हवा के रासायनिक विश्लेषण की चर्चा पान की दुकान पर होने लगी है। एक महानगर में, बस और टैक्सी के चालक रात-रात भर जागकर अपने-अपने वाहन में सी.एन.जी. भरवाते हैं और दिन भर सोते-सोते वाहन चलाते हैं। जब कभी आराम करने का मूड हुआ, हड़ताल पर चले जाते हैं।

इस तरह, सभी लोगों ने, इस समस्या को चारों ओर से घेर कर निपटने के जो प्रयास किए उसके फलस्वरूप तकरीबन वहीं परिस्थितियाँ पुनर्जीवित हो गई हैं जिनके कारण कि लोग यात्रा पर जाते समय अपने प्रियजनों से अन्तिम विदा लेकर ही चला करते थे।

यह स्थिति निश्चय ही मानव हित में है। वस्तुतः स्वाभाविक रूप से मनुष्य का जीवन व्यतीत करने हेतु जो अधिकतम आवश्यक है, उसके संदर्भ में मुझे एक पुराने फिल्मी गीत वह पंक्ति याद आती है जिसमें कहा गया है कि 'चार रोटियाँ एक लंगोटी बाकी सब बकवास है।' वाह! कितनी सारगर्भित बात कही गई है। इस कथन से स्पष्ट होता है कि आदमी को जीने के लिये जो चाहिए वह मूलतः खेतों में पैदा होता है अनाज भी, कपास भी। अतः नगरों-महानगरों में बसने अथवा रेलों, बसों, वायुयानों में बेतहाशा भीड़ खड़ी कर देने का कारण आदमी की बुनियादी जरूरतों को पूरा करना तो कतई नहीं लगता। इसके पीछे अवश्य ही कुछ ज्यादा पाने की लालसा नजर आती है। लोभ नजर आता है। लालच नजर आती है।

महात्मा कबीर, रूखी-सूखी नोन के साथ खाते हुए, ताजिंदगी संतुष्ट रहे और कह गए कि जिसे संतोष धन मिल गया उसे और कुछ दरकार नहीं। इस सिद्धांत के अंतर्गत जो लोग शान्ति से अपने गाँवों में रह रहे हैं, जो इधर-उधर जाने का लोभ नहीं पाल रहे, उनके बारे में यह कहना उचित ही होगा कि धन्य हैं वे लोग जो शान्ति से रह लेते हैं।

7/56-ए, मोतीलाल नेहरू नगर (पश्चिम), भिलाई (दुर्ग) छत्तीसगढ़, 490020

अगर उठो तो बनो हिमालय

श्रीपाल जैन 'दिवा'

अगर उठो तो बनो हिमालय
गहरे सागर हो जाओ
व्यापक नभ से बनकर भी तुम
लदी डाल से झुक जाओ।

फूल बनो काँटों के घर में
खिलकर सौरभ भर जाओ
नीरस हृदय उपेक्षित जग में
मकरन्दी रस भर जाओ।

सरिता से शीतल परहित में
तृप्ति दे बहते जाओ
धरणी सी ममता-समता धर
वेदन को सहते जाओ।

बनो तो कंचन से बनकर तुम
नग से उस में जड़ जाओ
राह गढ़ो जग हित सत्पथ में
न्याय-नीति हित अड़ जाओ।

पवन प्राण से बनकर जग के
साँस-साँस में बस जाओ
मलय त्रिवेणी बहा-बहाकर
स्नेह सलिल बन बह जाओ।

जीवन वह जिसको जग जाने
काम सुनामी कर जाओ
करो कर्म की खेती ऐसी
स्व-पर वेदना हर जाओ।

श्रम का मूल्य चुकाना पावन
स्वेद बहा समता गाओ
तूफानों के बीच हिमालय
बनकर, साहस दिखलाओ।

शाकाहार सदन
एल-75, केशर कुंज,
हर्षवर्धन नगर, भोपाल-3

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री महावीर उदासीन आश्रम, कुण्डलपुर

ब्र. अमरचन्द्र जैन

दिगम्बर जैन समाज का यह प्रथम उदासीन आश्रम है। इसके संस्थापक स्व. पूज्य गोकुलचन्द जी वर्णी ने त्यागी व्रती पुरुषों को सुस्थिर कर धर्माराधना तथा शुद्ध भोजन-पान हेतु एक ऐसे आश्रम की कल्पना की थी जहाँ रहकर मुमुक्ष गृह से उदासीन होकर अपना कल्याण कर सकें और समाधि की साधना कर सकें।

सन् 1910-11 में कुण्डलपुर में उन्होंने थोड़ी जमीन खरीदी और झोपड़ियों में त्यागीवृन्द रहकर स्वयं भोजन बनाते और धर्माराधन करते थे। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित वे इन्दौर पहुँचे ताकि आश्रम की स्थापना/भवन हेतु अर्थ संग्रह किया जा सके। इंदौर में सर सेठ हुकमचन्द जी ने जब यह विचार सुना तो प्रभावित होकर विनय की कि ऐसा आश्रम यहाँ इंदौर में खोलिये। बाबा गोकुल-चन्द जी ने सेठ सा. का प्रस्ताव मंजूर किया और सेठ साहब के तीनों भाइयों ने दस-दस हजार रु. देकर एक उदासीन आश्रम इंदौर में संवत् 1971 चैत्र शुक्ल 9 (सन् 1914) को स्थापित किया तथा पं. पन्नालाल जी गोधा प्रथम अधिष्ठाता नियत हुए। यह आश्रम प्रसिद्ध हुआ और आज भी चल रहा है।

बाबा गोकुलचन्द्र जी की भावना कुण्डलपुर क्षेत्र पर बड़े बाबा के पादमूल में आश्रम स्थापना की थी। अतः भिन्न-भिन्न स्थानों से चन्दा एकत्रित कर उदासीन आश्रम का भवन, जहाँ छोटी-छोटी झोपड़ियाँ थीं, सन् 1915 वीर नि.सं. 2441 में स्थापित किया। इस भवन का उद्घाटन वीर नि.सं. 2444 सन् 1918 में हुआ था। 85 वर्ष से अब तक यह आश्रम अपनी स्वयं की अर्थ व्यवस्था के तहत कुंडलपुर में चल रहा है। आश्रम की ओर से कभी कोई दान की अपील नहीं की गई। एक प्रबंध समिति इसका संचालन करती आ रही है।

पीछे मुड़कर देखें, इसी कुण्डलपुर के संस्थापक स्व. बाबा गोकुलचन्द जी वर्णी के सुपुत्र स्व. पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री ने प्रायः 14 वर्ष की उम्र में परिग्रह परिमाण व्रत ग्रहण किया था। पू.स्व. गणेश प्रसाद जी वर्णी ने बाबा गोकुलचंद जी वर्णी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये और वे उनके दीक्षा गुरु हुए। संस्थापक के सन् 1923 में दिवंगत होने के पश्चात् आश्रम प्रबंध समिति ने संचित निधि के आधार पर ब्र. भरोसे लाल, ब्र. जयचंद्रजी, तत्पश्चात् ब्र. नन्हे लाल जी का अधिष्ठातृत्व रहा।

अनेक वर्षों तक ब्र. भगवानदास जी लहरी ने सफलतापूर्वक आश्रम एवं तीर्थ क्षेत्र कमेटी के कार्यों में महत्त्वपूर्ण योगदान देकर पुष्ट किया। उनके निधन के बाद श्री भगवान दास जी गढ़ाकोटा एवं पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री ने यथा योग्य संचालन किया।

सन् 1968 में स्व. न्यायालंयकार पं. वंशीधर जी शास्त्री, इंदौर की अध्यक्षता में आश्रम समिति द्वारा आयोजित एक व्रती सम्मेलन भी हुआ तथा 13.2.68 को (दिवंगत हुए सदस्यों की वजह से) प्रबंध समिति का पुनर्गठन भी उनके सान्निध्य में हुआ।

स्व. पं. जगन्मोहन लाल जी की प्रेरणा एवं प्रयास से संत शिरोमणि आचार्य 108 विद्यासागर जी महाराज का 1976 में कटनी से कच्चे मार्ग से कुण्डलपुर आगमन हुआ। आचार्य श्री को कुण्डलपुर के बड़े बाबा ने इतना आकर्षित किया कि अब तक आचार्य श्री के ससंघ पाँच चातुर्मास यहाँ सम्पन्न हुए।

इसी आश्रम में बैठ कर पं. जगन्मोहन लाल जी शास्त्री ने ब्र. बहिनों तथा भाइयों को धर्म शिक्षण-स्वाध्याय कराया था। आचार्य श्री के संघ की अधिकांश आर्यिकाएँ पं. जी से शिक्षित हैं। कुछ ब्र. भाई मुनि पद पर स्थित हैं। बुंदेलखण्ड की धरती आचार्य श्री के पदार्पण से उर्वरा हो गई तथा हर वर्ष अच्छी फसल उगने लगी। संघ का परिवार निरंतर वृद्धि की ओर है और इस चौथाई शताब्दी ने बाल ब्रह्मचारी मुनि एवं आर्यिकाओं की संख्या का अपूर्व इतिहास रच दिया।

पिछले वर्षा योग 1995 के समय बाबा परसुराम जी ने जो पहिले कुण्डलपुर आश्रम में रहते थे इंदौर आश्रम से आये और 96 वर्ष की आयु में आचार्य के ससंघ सान्निध्य में समाधि प्राप्त की। कई वर्षों से आचार्यश्री से निवेदन करने के पश्चात् पं. जगन्मोहन लाल जी सिद्धान्तशास्त्री, कटनी को इसी वर्ष आचार्य श्री ने विधिवत् योगायोग देखकर सल्लेखना और समाधि के लिये संकल्प दिलाया और तीन माह की साधना के बाद 7 अक्टूबर 1995 शरद पूर्णिमा की पूर्व संध्या पर आचार्य श्री एवं संघस्थ साधुओं की उपस्थिति में पंचनमस्कार मंत्र जपते पं.जी ने शरीर छोड़ा था। उनकी आयु 94-2-1 दिन थी।

समय-समय पर कुण्डलपुर तीर्थ क्षेत्र कमेटी के पदाधिकारी अध्यक्ष, मंत्री आदि महावीर आश्रम समिति के अध्यक्ष, मंत्री सदस्य आदि रहे और आज भी हैं। वर्तमान में पूर्व क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष एवं मंत्री रहे डॉ. शिखरचंद जी (अब सप्तम प्रतिमा धारी) आश्रम समिति के अध्यक्ष हैं तथा श्री प्रेमचंद जी, खजूरी वाले (पूर्व मंत्री क्षेत्र कमेटी) मंत्री पद पर हैं। श्री अमरचंद जैन, कुण्डलपुर कोषाध्यक्ष हैं।

आश्रम भवन पुराना एवं जर्जर हो गया है। इसकी जगह नवीन तथा आवश्यक सुविधानुसार तरीके से निर्माण की आवश्यकता है। आज पढ़े लिखे गृह से विरत सम्पन्न लोग धर्म साधना करना चाहते हैं। आचार्य श्री के प्रभाव से अनेक रिटायर्ड एवं सम्पन्न लोग तीर्थ क्षेत्र पर सुविधाजनक कमरों में रह कर साधना करने के इच्छुक हैं। हमारी भावना है Oldmen Hostel जैसा आधुनिक सुविधायुक्त भवन का निर्माण हो जाये ताकि मुमुक्ष निराकुल होकर समाधि की भावना रख, साधना कर सकें।

●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दयोदय पशु संवर्धन एवं पर्यावरण केन्द्र (गौशाला) तिलवाराघाट, जबलपुर

सुबोध जैन
उपसंयोजक-प्रचार प्रसार चातुर्मास कमेटा

एक परिचय

भगवान महावीर के 2600वें जयन्ती वर्ष को भारतवर्ष में 'अहिंसा वर्ष' के रूप में मनाया जा रहा है। 'अहिंसा परमोधर्म' के पोषक एवं श्रमण संस्कृति के सिरमौर दिगम्बराचार्य परमपूज्य 108 श्री विद्यासागर जी महाराज की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से कृतार्थ जबलपुर के कुछ युवकों में प्राणि मात्र पर दया के भाव उदित हुये। विदुषी परमपूज्य 105 आर्यिका श्री दृढ़मति माता ने उन्हें दिशाबोध दिया, फलस्वरूप इन युवकों ने एक अभिनव योजना को मूर्तरूप देना प्रारंभ किया।

'दयोदय पशु संवर्धन एवं पर्यावरण केन्द्र' नामक संस्था एक यथार्थ रूप लेकर तीर्थ क्षेत्र 'पिसनहारी की मढ़िया' से चार किलोमीटर दूर तिलवारा घाट में बाईस एकड़ भूखण्ड पर पुण्य सलिला नर्मदा को पार्श्व में उसे साक्षी रख उसकी मनोरम पृष्ठभूमि पर अपने संविधान में संकल्पित उद्देश्यों को साकार करने हेतु कृतसंकल्प हो पूर्ण मनोयोग से निःस्वार्थ एवं लगनशील शिक्षित युवकों के माध्यम से निर्माण कार्य प्रगति पर है।

संस्था के मूल उद्देश्य पशु संरक्षण, पशु चिकित्सा, औषधीय एवं पशुओं का पर्यावरण संतुलन में प्रमुख योगदान आदि को स्थापित करना है। अहिंसा के उपदेश को मूर्तरूप देने का यह अभिनव प्रयास आचार्य श्री से आशीर्वादित एवं मार्गदर्शित है। इन महान विभूतियों से प्रेरित युवक इस संस्था के माध्यम से अन्य जन एवं समाज कल्याणकारी योजनाओं को भी प्रारंभ करने हेतु संकल्पित है। इनमें प्रमुख वृद्धाश्रम संचालन तथा दयोदय ज्ञान तीर्थ की स्थापना है।

संस्था में पशु संवर्धन हेतु दो हजार गायों के रखरखाव की योजना रूपी प्रथम चरण कार्यमूर्त रूप प्राप्त कर रहा है। संस्था वर्तमान में प्रगतिशील है जो इस प्रकार है-

(अ) भूमि एवं विकास- (1) बाईस एकड़ भूमि क्रय की गई। (2) चहारदीवार एवं प्रवेश द्वार निर्माण प्रगति पर है। (3) आंतरिक सड़कों पर निर्माण कार्य प्रगति पर है। (4) आंतरिक प्रकाश व्यवस्था सुव्यवस्थित रूप ले रही है। (5) जल प्रदाय हेतु कुँआ एवं दो नलकूपों का खनन किया गया है। (6) जल वितरण व्यवस्था प्रगति पर है।

(ब) निर्माण कार्य- (1) आठ सौ वर्गफुट का अस्थायी कार्यालय एवं भण्डार निर्मित किया गया है। (2) सात हजार दो सौ वर्गफुट के दूसरे भण्डारगृह का निर्माण किया गया है। (3) तैंतीस फुट बाई एक सौ आठ फुट की सात गौशाला भवनों का निर्माण कार्य प्रगति पर हैं। (4) छत्तीस सौ बीस वर्ग फुट में पशु चिकित्सालय निर्मित किया गया है। (5) दो हजार चार सौ पैंसठ वर्गफुट एवं तेरह सौ पैंसठ वर्गफुट में पशु संवर्धन शाला का निर्माण किया गया है। (6) छह हजार वर्गफुट में वृद्धाश्रम निर्माणाधीन हैं।

(स) गौ संरक्षण कार्य- (1) वर्तमान में परिसर में सौ गायें हैं।

(द) उपकरण - (1) ट्रेक्टर का क्रय किया जाना है। (2) ट्राली का क्रय किया जाना है।

उपरोक्त कार्यों को पूर्णता प्रदान करने के अतिरिक्त भूमि के समतलीकरण एवं अन्य आवश्यक सुविधाओं से परिपूर्ण करना है। चार हजार वर्गफुट के कार्यालय एवं भण्डार चार अन्य गौशाला भवन, पानी की टंकी, पशु चिकित्सा संबंधी शोध भवन, औषधी भवन तथा सभा कक्ष निर्माण का कार्य कराया जाना है।

शेष उन्नीस सौ गायों की आमद एवं व्यवस्था के अतिरिक्त ट्रेक्टर, ट्राली, जीप, चारा मशीन, चिकित्सा एवं अनुसंधान उपकरण, गोबर गैस प्लांट, गेसोलिन विद्युत संयंत्र की स्थापना, वृद्धाश्रम में चिकित्सा व्यवस्था आदि की उपलब्धता शेष है। उपर्युक्त सभी प्रयोजन के संधारण हेतु व्यवस्थित योग्य एवं कुशल कार्यवाहकों की नियुक्ति वांछित है।

अहिंसा के पुजारी आचार्य श्री ससंघ शीतकालीन प्रवास में संस्था के परिसर को उपकृत कर पुनः 'अहिंसा वर्ष दो हजार एक' की भावना के पोषक प्रणेता नायक बनकर चातुर्मास (वर्षायोग) गौशाला परिसर, सलिला नर्मदा के सान्निध्य में वर्षावेग से प्रीति बढ़ा, धर्म एवं आत्म कल्याण का भाव सलिला प्रवाहित कर रहा है। संस्था इन भावों का अमूल्य संकलन कर पशु संवर्धन, वृद्धा संरक्षण, युवा पीढ़ी के आध्यात्मिक एवं शैक्षणिक विकास की महत्त्वाकांक्षी योजनाओं को चरणबद्ध शीघ्रातिशीघ्र क्रियान्वित करने हेतु तत्पर है। गौशाला एवं वृद्धाश्रम के सर्वांगीण विकास के साथ-साथ शैशव से सकल संकायों में स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था हमारी अभिनव योजना है।

दयोदय ज्ञान तीर्थ के रूप में समाज के अपेक्षाकृत कमजोर वर्ग के प्रतिभावान बच्चों को सँवारने का समयोचित एवं सुनियोजित प्रयास है। एक वृहद् सामाजिक यज्ञ की समिधा के रूप में आपका सहयोग एवं आपकी उपस्थिति हमारी असीम आवश्यकतां की पूर्ति करने में सहायक होगी।

कृपया आचार्य श्री एवं समस्त मुनि संघ का अपने परिवार एवं इष्ट जनों के साथ पधारकर पावन सान्निध्य एवं शुभ-आशीर्वाद प्राप्त करें एवं अपनी उपस्थिति से संस्था का गौरव बढ़ावें। दर्शनार्थियों के ठहरने की समुचित व्यवस्था दयोदय तीर्थ परिसर में की गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवस्तुति

कविवर बुधजन

प्रभु पतित-पावन, मैं अपावन चरन आयो सरन जी।
यों विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरन जी।

शब्दार्थ - पतित = पापी, पावन = पवित्र, विरद = कीर्ति, निहार = देखकर, मेट = नष्ट करो।

अर्थ- हे प्रभु! आप पापियों को पवित्र करते हैं, मैं अपवित्र हूँ। आपके चरणों की सरण में आया हूँ। हे प्रभु! आप अपनी कीर्ति को देखकर मेरा जन्म-मरण नष्ट कीजिए।

तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रमगिन्यो हितकार जी।।

शब्दार्थ - पिछान्या = पहचाना, अन = अन्य/दूसरे, विविध = अनेक, सेती = कारण, भ्रम = भूल, गिन्यो = समझता रहा, हितकारी = उपकारी।

अर्थ- हे जिनेन्द्र! मैंने आपको नहीं पहचाना और दूसरे अनेक प्रकार के देवताओं को मानता रहा। इस बुद्धि के कारण अपनी आत्मा को नहीं पहचाना व इसी भूल को अपना उपकारी समझता रहा।

भव विकट वन में कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो।।

शब्दार्थ - भव = संसार, विकट = भयानक, हर्‌यो = हरण कर लिया, फिर्‌यो = घूम रहा हूँ।

अर्थ- इस संसाररूपी भयानक जंगल में कर्म रूपी शत्रुओं ने मेरा ज्ञान रूपी धन हरण कर लिया है, इस कारण हित को भूलकर भ्रष्ट हो गया हूँ और दुःखदायी गतियों में भ्रमण कर रहा हूँ।

धन घड़ी यो धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुजी को लख लयो।।

शब्दार्थ - धन = धन्य, लख = दर्शन, भाग = भाग्य।

अर्थ - यह घड़ी धन्य है, यह दिन धन्य है, और आज मेरा जन्म भी धन्य हो गया है। आज मेरे भाग्य का उदय हुआ है, जो आज आपके दर्शन मुझे प्राप्त हुए हैं।

छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुणयुत, कोटि रवि-छबि को हरैं।।

शब्दार्थ- छवि = मुखमुद्रा, नासा = नासाग्र, वसु = आठ, कोटि = करोड़ों, रवि = सूर्य, छवि = कान्ति।

अर्थ- हे भगवान्। आपकी मुखमुद्रा वीतरागी है, आप नग्न दिगम्बर हैं, आपकी दृष्टि नासाग्र है, आठ प्रातिहार्यों से सहित हैं, अनंत गुणों से सहित है, करोड़ों सूर्यों की कांति भी आपके सामने फीकी हो जाती है।

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदयरवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिन्तामणि लयो।।3।।

शब्दार्थ- तिमिर = अंधकार, मेरो = मेरा, उर = हृदय, हरष = उल्लास, मनु = मानो, रंक = भिखारी।

अर्थ- हे भगवन्। आपके दर्शन से मेरा मिथ्यात्वरूपी अन्धकार नष्ट हो गया और आत्मरूपी सूर्य का उदय हुआ है। मेरे हृदय में ऐसा उल्लास हुआ है जैसे किसी भिखारी को चिन्तामणि रत्न मिलने पर होता है।

मैं हाथ जोड़-नवाय मस्तक, वीनउँ तुव चरउँनजी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन-सुनहु, तारन तरनजी।।

शब्दार्थ- वीनउँ = विनती करता हूँ, तुव = आपके।

अर्थ- मैं हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर आपके चरणों में विनती करता हूँ। आप सर्वश्रेष्ठ हैं, तीनों लोकों के स्वामी है, और जीवों को भवसागर से पार उतारने के लिये नौका है। हे जिनेन्द्र! मेरी विनती सुनिये।

जाँचू नहीं सुरवास, पुनि नरराज परिजन-साथजी।
बुध जाच हूँ तुव भक्ति भव-भव, दीजिए शिवनाथ जी।।

शब्दार्थ- जाँचू = माँगना, बुध = बुधजन कवि, भव = जन्म।

अर्थ- हे भगवन्! मैं देवपद, चक्रवर्ती पद तथा सम्बन्धियों का साथ नहीं माँगता, मैं यही माँगता हूँ कि जन्म-जन्म में आपकी भक्ति हमें मिलती रहे। वह मुझे प्रदान कीजिए।

अर्थकर्ता : ब्र. महेश
श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशलक्षण महापर्व पर 10 दिवसीय श्रावक संस्कार शिविर का शुभारंभ

परमपूज्य मुनि पुंगव 108 श्री सुधा सागर जी महाराज, क्षुल्लक 105 श्री गम्भीर सागर जी महाराज, क्षुल्लक 105 श्री धैर्य सागर जी महाराज के सान्निध्य में दादावाड़ी नसियां जी, छोटा चौराहा, कोटा (राजस्थान) में दशलक्षण महापर्व के अवसर पर 10 दिवसीय श्रावक संस्कार शिविर का विधिवत् शुभारम्भ कलश स्थापना के साथ हुआ। कलश स्थापना गाजियाबाद निवासी श्री गुलशन राय, राजीव राय जी द्वारा की गई, अखण्ड दीप ज्योति राजकुमार जी तलवण्डी द्वारा प्रज्वलित की गई व झण्डारोहण चक्रवर्ती मनोहर गोटेवाला द्वारा किया गया।

परमपूज्य मुनिपुंगव 108 श्री सुधासागर जी महाराज ने समाज के अनुरोध पर इस शिविर को आशीर्वाद देकर स्वीकृति प्रदान की थी. श्रावक संस्कार के संयोजक ऋषभ मोहिवाल, मुख्य संयोजक हुकम काका, कार्याध्यक्ष श्री राजमल पाटोदी, महामंत्री श्री रमेश जैन तिजारिया, महावीर मास्टर, महावीर कोठारी, राजमल जी सर्राफ सा. व समाज के सभी श्रावक बन्धु शिविर को सफल बनाने में दिन-रात जुटे रहे व आवास की व्यवस्था आयोजन स्थल से 6 कि.मी. दूर रावतभाटा रोड पर स्थित पटवार संघ परिसर में की गयी थी। वहाँ से शिविरार्थी प्रातः 3.50 बजे उठकर नित्य क्रियाकर्म से निवृत्त होकर प्रार्थना सभा में भाग लेते थे व ठीक प्रातः 5.15 पर दादावाड़ी नसियां जी में ध्यान हेतु मुनिश्री के चरणों में उपस्थिति देते थे।

ध्यान साधना मुनिपुगंव 108 श्री सुधासागर जी महाराज द्वारा कराई जाती थी तत्पश्चात् शिविरार्थियों के लिये अलग से तैयार पाण्डाल में शिविरार्थियों द्वारा एक साथ पूजा अर्चना की जाती थी, तत्पश्चात् प्रवचन स्थल पर क्षुल्लक श्री धैर्य सागर जी व ब्रह्मचारी संजय भैया जी द्वारा तत्त्वार्थ सूत्र के 10 अध्यायों का वाचन होता था तथा प्रत्येक अध्याय के समापन पर अर्घ चढ़ाया जाता था। तत्त्वार्थ सूत्र के अर्घों के बाद दशलक्षण धर्म पर मुनिश्री द्वारा नित्य प्रवचन दिये जाते थे। मुनिश्री के सन्निध्य में यह दसवां संस्कार शिविर था। मुनिश्री ने शिविरार्थियों की भोजन व्यवस्था के लिये एक अनूठा कार्यक्रम दिया था, जिसके अंतर्गत पूरे कोटा शहर की उपनगरीय कॉलोनियों में शिविरार्थियों का भोजन श्रावक बन्धुओं के घर पर शुद्ध तरीके से तैयार किया जाता था व क्रम से शिविरार्थी समाज की व्यवस्थाओं के अनुसार पाण्डाल से मुनिश्री के आदेशों की पालना करते हुए मौन लेकर भोजन हेतु प्रस्थान करते थे व पुनः पाण्डाल में आकर ही अपना मौन व्रत छोड़ते थे।

दिनभर के व्यस्त कार्यक्रमों में दिन में 1.30 बजे परमपूज्य मुनिश्री द्वारा शिविरार्थियों का शंकासमाधान किया जाता था और 2.30 बजे से 4.00 बजे तक सम्यकत्वाचरण नामक ग्रंथ पढ़ाया जाता था, सायं 4.00 बजे से 4.30 बजे तक नैतिक शिक्षा की जानकारी तत्पश्चात् जलपान, सायं 5.30 बजे से प्रतिक्रमण, 6.15 से गुरु भक्ति एवं आरती तत्पश्चात् शिविरार्थियों की मुनिश्री, क्षुल्लक श्री 105 धैर्यसागर जी महाराज व ब्रह्मचारी संजय भैया जी व अन्य ब्रह्मचारी भैयाओं के द्वारा अलग-अलग ग्रुपों में कक्षायें ली जाती थीं। इस तरह दिनभर के व्यस्त कार्यक्रमों के पश्चात् शिविरार्थी रात्रि विश्राम हेतु विश्राम स्थल पटवारसंघ के लिये प्रस्थान करते थे। इस संस्कार शिविर के विशेष पुण्यार्जक श्री गुलशन राय राजीव राय गाजियाबाद निवासी, श्री राजकुमार जी तलवण्डी वाले, चक्रवती मनोहर गोटेवाले, भागचन्द जी सुरलाया कैथूनवाले, श्री राजमल जी विमल कुमार जी भिण्डीवाले, बोद्धराज जी जैन दुगेरिया दादावाड़ी निवासी, शान्तिलाल जी सुरेशचन्द्र जी हरसोरा, कन्हैयालाल पारस कुमार जी व श्रीमती केसर बाई धनोप्या डाबी वाले थे।

महेन्द्र कासलीवाल
प्रचार संयोजक, श्री दिगम्बर जैन धर्म प्रभावन समिति, कोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण संस्कृति की रक्षा व रक्षाबन्धन

आचार्य गुरुवर 108 श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य मुनि पुंगव 108 श्री सुधासागर जी महाराज, क्षुल्लक 105 श्री गम्भीरसागर जी महाराज, क्षुल्लक 105 श्री धैर्यसागर जी महाराज का ससंघ चातुर्मास हाड़ौती की पुण्यधरा चर्मण्यवती नदी के तट पर बसे औद्योगिक नगरी कोटा में दादावाड़ी नसियां जी में हो रहा है। इस चातुर्मास से कोटा नगर में चारों तरफ हर्ष का माहौल है हाड़ौती की धरा कोटा में यह पहला अवसर है जब किसी मुनि की प्रवचन सभा में अपार जन समूह उमड़ रहा है। रविवार के दिन तो समाज द्वारा की गई बैठने की व्यवस्था भी कम पड़ जाती है। मुनि श्री अपने अंदाज में शास्त्र युक्त प्रवचन से श्रावक को संस्कारित कर रहे हैं, कई बार तो प्रवचन सभा 2 घंटे तक चलती है लेकिन श्रावक अभिभूत होकर समय को भूल जाता है। श्री दिगम्बर जैन धर्म प्रभावना समिति के प्रचार संयोजक महेन्द्र कासलीवाल ने बताया कि पावन वर्षा योग में पूरे देश से जन सैलाब उमड़ रहा है जो देखते ही बनता है। जैन समाज कोटा ने इस बार मुनि श्री के सान्निध्य में रक्षाबन्धन पर्व को एक अलग अन्दाज में मनाया, सभी श्रावक बन्धुओं ने मंदिर प्रांगण में अपने अपने हाथों पर रक्षा सूत्र बाँधकर प्रतिज्ञा की कि मुनियों की रक्षा के लिये अगर हमें प्राणों की आहुती भी देनी पड़े तो हम तैयार रहेंगे। तत्पश्चात् मुनिश्री के आह्वान पर सकल दिगम्बर जैन समाज कोटा की ओर से 34 परिवारों ने (प्रत्येक परिवार की ओर से 700 श्रीफल) व सभी श्रावक बन्धुओं ने श्रीफल बादाम से अर्घ समर्पित किये। इस तरह लगभग 25-30 हजार नारियलों से अर्घ समर्पित किये। सभी 700 मुनीराजों के अर्घो का उच्चारण मुनि श्री सुधासागर जी महाराज व क्षुल्लक 105 श्री गंभीरसागर जी महाराज व क्षुल्लक 105 श्री धैर्यसागर जी महाराज ने किया और मात्र 2 घंटों में यह सारे अर्घ चढ़ाये। प्रचार संयोजक महेन्द्र कासलीवाल ने बताया कि यह विश्व का प्रथम अवसर है जहाँ रक्षाबन्धन पर्व पर 25-30 हजार श्रीफल श्रावकों के द्वारा समर्पित किये गये। नारियलों का ढेर देखकर मानो ऐसा लग रहा था जैसे साक्षात् मेरु पर्वत दिख रहा हो, यह अर्घ व श्रीफल चारित्रचूड़ामणि परम पूज्य अंकपनाचार्य आदि 700 मुनियों की रक्षा की स्मृति में समर्पित किये गये। इस पूरे दृश्य को 10,000 से भी ज्यादा श्रद्धालु अपनी आँखों से साक्षात देख रहे थे, मुनिश्री ने धर्म सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि जैन दर्शन में रक्षा बन्धन पर्व श्रमण संस्कृति के रक्षापर्व के रूप में मनाया जाता है. इसके महत्त्व को विस्तार से बताते हुए मुनिश्री ने कहा कि चतुर्थ काल में चारित्रचूड़ामणि परमपूज्य अंकपनाचार्य ने ससंघ वर्षा योग के लिये हस्तिनापुर में प्रवेश किया तो वहाँ के पद्म राजा से सात दिन का राज्य माँगकर बलि आदि मंत्रियों ने प्रलोभन में, मुनियों को मारने के लिये उनके चारों तरफ अग्नि जला दी। निरन्तर चारों तरफ आग की गर्मी से 700 मुनिराज मूर्छित हो गये तब इनकी रक्षा हेतु अपनी योग साधना का परित्याग करते हुए वात्सल्यमूर्ति श्री विष्णुकुमार जी महाराज ने उनकी रक्षार्थ विक्रिया ऋद्धि के प्रभाव से बलि आदि मंत्रियों को परास्त करके चारित्रचूड़ामणि परमपूज्य श्री अंकपनाचार्य आदि 700 मुनियों के चरणों में नतमस्तक करवाया और उन्हें समीचीन धर्म का स्वरूप समझाकर सच्चा श्रावक बनाया। इसी उद्देश्य को लेकर परमपूज्य मुनिपुगंव 108 श्री सुधासागर जी महाराज हम सभी श्रावकों में परमपूज्य अंकपनाचार्य आदि 700 मुनिराजों के प्रति बहुमान एवं श्रद्धा को जागृत कर 700 मुनियों को अर्घ समर्पित कराया।

अन्त में मुनिपुंगव 108 श्री सुधासागर जी महाराज ने सकल दिगम्बर जैन समाज से आये श्रावक बन्धुओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि इसी भांति हर वर्ष श्रमण संस्कृति के बहुमान हेतु अपने अपने नगरों, कस्बों में श्रमण संस्कृति रक्षा पर्व (रक्षाबंधन) को मनाये, यही हमारे समाज की ओर से परमपूज्य अंकपनाचार्य आदि मुनिराजों के लिये सच्ची श्रद्धा होगी। अन्त में दिगम्बर जैन धर्म प्रभावना समिति के कार्याध्यक्ष राजमल जी पाटोदी, मुख्य संयोजक हुकम जैन 'काका', महामंत्री श्री रमेश जैन तिजारिया, स्वागताध्यक्ष ऋषभ मोहिवाल, महावीर मास्टर सा., राजमल सर्राफ, महावीर कोठारी आदि ने उपस्थित सकल दिगम्बर जैन समाज का आभार प्रकट किया। मुनिश्री के द्वारा श्रमण संस्कृति पर यह चौथा आयोजन था जो अब तक के सभी रिकार्ड तोड़ चुका है।

महेन्द्र कासलीवाल
प्रचार संयोजक, श्री दिगम्बर जैन धर्म प्रभावन समिति, कोटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावक संस्कार शिविर : संयम की ओर कदम

परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की विदुषी शिष्या पूज्य आर्यिका पूर्णमती माताजी के सान्निध्य में दिगम्बर जैन मंदिर टिनशेड, टी.टी. नगर में दिनांक 23.8.2001 से दिनांक 1.9.2001 तक 'श्रावक संस्कार शिविर' सम्पन्न हुआ। लगभग 160 श्रावक सहभागी बने। शिविर अवधि में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए दसधर्मों को जीवन में उतारने का अभ्यास किया। 8 वर्ष की उम्र से लेकर 75 वर्ष की उम्र तक के भैया-बहन शामिल थे। सबने गृह त्याग का संकल्प लेकर शिविर स्थल पर ही रात-दिन निवास किया। प्रातः 4 बजे घंटी टनटनाती थी। प्रतिदिन ब्र. भैया रूपेश जी मंदिर में एकत्रित सभी शिविरवासियों को प्रभु स्तुति करवाते थे। स्तुति के पश्चात् धर्म सभा भवन में प्रतिक्रमण व सामायिक की क्रियायें सम्पन्न होती थीं। तत्पश्चात् प्रभात भेरी से धर्म प्रभावना एवं जन जागृति का कार्य सम्पन्न होता था। प्रभात फेरी से लौटने पर पूज्य आर्यिका श्री पूर्णमती माता जी गुरुभक्ति के साथ उपवास की आज्ञा प्रदान करती थीं। तत्पश्चात् दैनिक क्रिया - स्नानादि से निवृत्त हो सामूहिक पूजन, माताजी के विशेष प्रवचन, आहारादि के पश्चात् प्रतिकमण सामायिक पाठ तथा दोपहर में पुनः प्रवचन। संध्या में पुनः प्रतिकमण व सामायिक पाठ। रात्रि को धार्मिक सांस्कृतिक कार्यक्रम व शिविर वासियों में से किसी एक के द्वारा एक धर्म पर प्रवचन। भाई राजेन्द्र जी की नाटिकाओं ने भी खूब धर्म प्रभावना की। इस शिविर में सतना, डूँगरगढ़, बाँसवाड़ा, खण्डवा, सनावद आदि नगरों के भैया-बहनों ने भी भाग लिया। इसमें अनेक शिविरार्थियों ने छः छः निर्जला उपवास किये व शेष चार जलोपवास किये। कुछ भाई-बहनों ने दस-दस जलोपवास किये। किसी ने आठ, किसी ने पाँच व अनेक लोगों ने तेला (तीन उपवास) सभी शिविरार्थियों के पारणे का कार्यक्रम भव्य स्तर पर हुआ। पारणा एवं चाँदी के प्रतीक चिन्ह आदि का प्रबन्ध भी श्री डॉ. डी.के. जैन, भोपाल के सौजन्य से हुआ।

दिनांक 2.9.2001 को सम्पूर्ण भोपाल जैन समाज ने सामूहिक क्षमावाणी उत्सव आर्यिका संघ के सान्निध्य में महामहिम राज्यपाल की उपस्थिति में मनाया। लगभग दस हजार लोगों की उपस्थिति ने क्षमावाणी समारोह की गरिमा में चार चाँद लगाये।

आर्यिका रत्न श्री पूर्णमती माताजी व संघ के सान्निध्य में दिनांक 30.9.2001 से 8.10.2001 तक कल्प द्रुम महामण्डल विधान का विशाल एवं भव्य आयोजन हो रहा है।

श्रीपाल जैन दिवा

तीर्थ संरक्षिणी महासभा द्वारा जैन शास्त्रों के संरक्षण हेतु कार्यशाला का आयोजन

लखनऊ 11 अगस्त। प्राचीन तीर्थ/मंदिर/मूर्ति जीर्णोद्धार कार्यों में संलग्न संस्था श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (तीर्थ संरक्षिणी) महासभा ने आज अपने केन्द्रीय कार्यालय नंदीश्वर फ्लोर मिल्स, ऐशबाग, लखनऊ के नवीन सेठी कांफ्रेंस हाल में प्राचीन शास्त्रों, पांडुलिपियों के संरक्षण हेतु इन्टेक के महानिदेशक डॉ. ओ.पी. अग्रवाल के निर्देशन में एक कार्यशाला का शुभारंभ किया। कार्यशाला का आयोजन 11 से 13 अगस्त तक किया गया। कार्यशाला का आज प्रथम सत्र था जिसका उद्घाटन महासभा जीवदया विभाग के संरक्षक डॉ. डी.सी. जैन, दिल्ली ने दीप प्रज्वलन कर किया। इस अवसर पर संस्था के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी, जैन महिलादर्श की प्रधान सम्पादिका डॉ. नीलम जैन, संस्था के निदेशक ज्ञानमल शाह, पुरातत्त्व संपर्क अधिकारी कमल कुमार रावका के साथ ईडर से पधारे श्री कनकभाई दोषी, अनिल गांधी, हितेन्द्र भाई कोठारी तथा मुकेश जैन तथा समाज के अन्य लोग उपस्थित थे।

इस अवसर पर प्रशिक्षण देने हेतु इन्टेक की ओर से सर्वश्री ओमप्रकाश जी अग्रवाल, श्रीमती ऊषा अग्रवाल, श्री अशोक पाण्डेय, श्री डी.एन. श्रीवास्तव पधारे।

उद्घाटन सत्र को सम्बोधित करते हुए डॉ. ओम प्रकाश जी अग्रवाल ने कहा कि शास्त्र संरक्षण बहुत ही पुनीत कार्य है। हम लोग मंदिरों में जाते है तो यह देखने को मिलता है कि वहाँ पर अनेकों शास्त्र हैं। ईडर में करीब 8 हजार ग्रन्थ हैं। एक से बढ़कर एक वे अच्छी तरह से रखे हुए हैं लेकिन उनमें थोड़े से परिवर्तन की जरूरत है। उनका रख-रखाव कैसे हो, उसके बारे में सभी को जानकारी होना जरूरी है। मैं महासभा के अध्यक्ष श्री सेठी जी को धन्यवाद देता हूँ कि इस तरह की कार्यशाला तीर्थ संरक्षिणी महासभा के अंतर्गत हो सकी है। इस तरह की यह पहली कार्यशाला है। इस कार्य को करने के लिये तीर्थ संरक्षिणी महासभा को एक ध्रुव फण्ड की स्थापना करना चाहिए। श्री अग्रवाल जी ने कहा कि यह वरन पूरे भारत वर्ष का काम है,केवल लखनऊ के लिये नहीं।

शास्त्रों के संदर्भ में डॉ. नीलम जैन ने कहा कि देव और गुरु के बीच में शास्त्रों को रखा गया है। गुरु के स्वरूप को बताते हैं शास्त्र। हमारे अनेक जैन शास्त्र हैं जो स्वर्णाक्षरों में लिखे हैं। हमारा दायित्व हो जाता है कि उनको सुरक्षित रख कर हम आगे आने वाली पीढ़ी के लिये मार्गदर्शक बनें। आज उनका संरक्षण करना हमारा प्रथम कर्तव्य हो जाता है।

पुरातत्त्व संपर्क अधिकारी एवं बैठक का संचालन कर रहे श्री कमल कुमार जी रावका ने कहा कि देश में शास्त्रों का भंडार भरा पड़ा है जिसमें हस्तलिखित शास्त्र अधिक संख्या में आज भी मौजूद हैं, लेकिन वे सभी शास्त्र आज अलमारियों में कैद हैं। शायद वर्ष में एक बार भी उन्हें देखा नहीं जाता है और वे शास्त्र, जो कि हमारी अमूल्य निधि हैं, कीड़े-मकोड़े और दीमकों की भेंट चढ़ रहे हैं। करीब एक वर्ष पूर्व हमारी मुलाकात डॉ. ओम प्रकाश जी अग्रवाल साहब से हुई। आपने शास्त्र संरक्षण की बातें बताई कि जो शास्त्र गल गये हैं, दीमक लग गई है, जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं, उन्हें सुधारा जा सकता है। हमने आपकी प्रयोगशाला में जाकर काम करने की पद्धति को देखा तो हमें पूरा विश्वास हो गया कि बिगड़े शास्त्रों को सुरक्षित कर सकते हैं। श्री रावका जी ने समस्त जैन समाज से निवेदन किया कि अपनी प्राचीन धरोहर को तन-मन-धन से बचायें।

तीर्थ संरक्षिणी महासभा के निदेशक श्री ज्ञानमल जी शाह ने कहा कि महासभा ने गत तीन वर्षों में प्राचीन तीर्थों के जीर्णोद्धार कार्य की जवाबदारी ली है और किसी हद तक अपनी जवाबदारी संभालने में सफल भी हुई है। उसका श्रेय समाज के सभी श्रेष्ठीगण को जाता है, जिन्होंने महासभा के ध्येय को समझा व उसे सफल करने में पूरा योगदान दिया। आज भारत के हर प्रान्त में जीर्णोद्धार कार्य चालू है, जिसमें महत्त्वपूर्ण कार्य कर्नाटक, तमिलनाडु, राजस्थान, मध्य प्रदेश,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, बिहार एवं आसाम में हो रहा है। प्राचीन तीर्थ अचल तीर्थ हैं, जिनकी देखभाल करना जरूरी है, उसी प्रकार चलते तीर्थ याने आचार्य-मुनिसंघ, आर्यिका माताएँ भी उतने ही पूजनीय है, उनके द्वारा लिखे शास्त्र का संरक्षण करना उतना ही जरूरी है, कारण जिन आचार्यों ने हस्तलिखित शास्त्र द्वारा जैन धर्म के सिद्धान्तों पर जो उपदेश दिये, यदि उनका संरक्षण नहीं किया गया तो अपनी अमूल्य धरोहर नष्ट हो जावेगी। उन्होंने कहा कि आज भी जहाँ-जहाँ भट्टारकों की गद्दी रही वहाँ हजारों की संख्या में हस्तलिखित शास्त्र उपलब्ध हैं, जैसे कि नागौर, ईडर, सागवाड़ा, खंभात, ऋषभदेव, कारंजा, जयपुर आदि-आदि। महासभा ने प्राचीन तीर्थों के जीर्णोद्धार कार्य को सँभाला है। अब हमारे कर्मठ अध्यक्ष महोदय का प्राचीन शास्त्रों के संरक्षण की तरफ ध्यान गया है, और उसी के अंतर्गत इस पहले शिविर का आयोजन किया गया है जिसमें शास्त्र संरक्षण वैज्ञानिक पद्धति से किस प्रकार किया जाये, यह बताया जा रहा है।

तीर्थ संरक्षिणी महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी ने कहा कि आज का दिन बहुत वर्षों की प्रतीक्षा के बाद आया है। हम इसके लिये बहुत समय से प्रयासरत थे किन्तु अब समय आ गया है। आज किसी ऐसी एजेंसी की आवश्यकता है जिससे हमारे प्राचीन शास्त्रों की सुरक्षा के प्रयास हो सकें। ईडर से पधारे श्री कनकभाई दोषी ने कहा कि शास्त्र संरक्षण की वर्कशाप से हम यहाँ से जो कुछ सीख कर जायेंगे उसके बाद एक शिविर ईडर में भी तीन दिवसीय करायेंगे। उसके लिये हम सभी को आमंत्रित करते हैं।

सुधेश जैन

आरक्षण समाप्ति अभियान (संयुक्त संस्था) मंच द्वारा आयोजित

आरक्षण मुक्ति यात्रा आयोजन में सहयोग करें

केन्द्र सरकार ने आरक्षण बाबत संविधान समीक्षा हेतु एक कमीशन की नियुक्ति की है जिसमें आरक्षण कब तक रखा जाय, किसे, किसको, कितना आरक्षण दिया जाय व कहाँ कहाँ आरक्षण लागू किया जाये- इन प्रश्नों पर विचार-विमर्श चल रहा है। उच्चतम न्यायालय ने अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति को दिये गये आरक्षण के अधिकार को वापस नहीं लिया जा सकता, ऐसा निर्णय दिया है। प्राईवेट सेक्टर की बड़ी औद्योगिक शैक्षणिक संस्थाओं में भी आरक्षण लागू करने हेतु सरकार ने कमीशन को सुझाव दिया है। साथ में सरकारी नौकरियों में योग्यता के मापदण्ड को समाप्त कर दिया जाये आदि अनेक प्रश्नों पर विचार चल रहा है। जिनका पूरी शक्ति से विरोध किया जाना चाहिए। इन प्रश्नों के अलावा अनेक प्रश्न हैं जिन पर विचार विमर्श हेतु तथा अपनी बात को केन्द्र तथा राज्य सरकार के पास पहुँचाने हेतु तथा अपने को संगठित करने हेतु एक आरक्षण मुक्ति यात्रा का आरंभ आरक्षण समाप्ति अभियान (संयुक्त संस्था) मंच द्वारा दिनांक 5 सितम्बर को हो रहा है। यह यात्रा दिल्ली. जोधपुर, टोक, बूंदी, कोटा, झालावाड़, उज्जैन, इंदौर, देवास, आष्टा, भोपाल, इटारसी, बैतूल, मुलताई, नागपुर, सियोनी, लखनादौन, जबलपुर, कटनी, मैहर, रीवा, माऊगंज, गढ़चकघाट इलाहाबाद, रायबरेली आदि जगहों पर होती हुई 13 सितम्बर 2001 दोपहर 1 बजे लखनऊ आ रही है।

महासभा, महासमिति व परिषद् ने मुक्ति यात्रा के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में योगदान दिया है। अतएव समाज से निवेदन है कि ऐसे कार्यक्रमों में अपना योगदान देकर अपने व अपने बच्चों के भविष्य को सुरक्षित करें। देश व समाज पर होने वाले घोर अन्याय से अपनी रक्षा करें। विशेष जानकारी के लिये सम्पर्क सूत्र -

आरक्षण समाप्ति अभियान (संयुक्त संस्था) मंच, आर-10ए, ग्रीन पार्क एक्सटेंशन, नई दिल्ली- 110016, फोन- 6197656, 916391111, 6516600, 6565299, www.indiandemocracy.org, E-mail:info@indiandemocracy.org.

निर्मल कुमार सेठी, अध्यक्ष
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा

50 वर्षों से देश के 20 करोड़ लोग चुनाव लड़ने से वंचित रहे

आरक्षण मुक्ति यात्रा का आगमन आज

जबलपुर 9 सितम्बर। आरक्षण समाप्ति अभियान 2001 के तहत राष्ट्रीय स्तर की आरक्षण मुक्ति यात्रा देश का भ्रमण करती हुई 10 सितम्बर को जबलपुर आ रही है। सायं 6 बजे मानस भवन, जबलपुर में आरक्षण यात्रा के राष्ट्रीय स्तर के विद्वान अपने विचार जनता के समक्ष रखेंगे। जिसमें पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री विपिनचन्द्र वर्मा, पूर्व न्यायाधीश श्री पी.सी. पाठक, पूर्व न्यायाधीश श्री के.एल. इसराणी भी विचार रखेंगे। आरक्षण मुक्ति यात्रा स्वागत समिति, जबलपुर इकाई के संयोजक हैं, बद्रीप्रसाद अग्रवाल तथा एच.एस. श्रीवास्तव आरक्षण मुक्ति यात्रा स्वागत समिति जबलपुर इकाई के अध्यक्ष बनाये गए हैं।

आरक्षण मुक्ति यात्रा पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, म.प्र., महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, दिल्ली आदि क्षेत्रों का भ्रमण करेगी। जारी बयान में कहा गया है कि राजनैतिक पार्टियों की वोट की राजनीति ने आरक्षण को एक अभिशाप बना दिया है। संविधान में 79वें संशोधन के द्वारा भारत सरकार ने आरक्षण की अवधि सन् 2010 तक बढ़ा दी है, इतना ही नहीं संविधान समीक्षा आयोग की आड़ लेकर उसके प्रस्तावित सुधारों के माध्यम से आरक्षण को अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिये मूल अधिकार बनाने की साजिश रची जा रही है। आरक्षण को मूल अधिकार बना देने पर आरक्षण अनंत काल के लिये लागू हो जाएगा तथा किसी भी न्यायालय में इसके विरुद्ध कोई याचिका भी दायर नहीं की जा सकेगी। उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों ने आरक्षण के प्रतिशत की सीमा निर्धारण आदि को लेकर जो प्रतिबंध लगाये हैं, वे अपने आप समाप्त हो जायेंगे। आरक्षण देश के नागरिकों के समानता के अधिकार का विरोधी है। जारी बयान में कहा गया है कि न्यायोचित यही है कि देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हों। अतः आज की आवश्यकता है कि जनता आरक्षण के विरुद्ध न केवल जागरूक हो वरन् संगठित होकर इसका विरोध करे।

आरक्षण समाप्ति अभियान संयुक्त संस्था मंच द्वारा कहा गया है कि पिछले 50 वर्षों से देश की 20 करोड़ से अधिक जनता को संविधान के अनुच्छेद 334 द्वारा चुनाव लड़ने के अधिकार से वंचित रखा गया है, यह है जनता की चुप्पी का नतीजा। वर्तमान सरकार द्वारा गठित संविधा समीक्षा आयोग ने जब राय जानने हेतु जो सुझाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसारित किये हैं, संभवतः ये लोगों की जानकारी में नहीं है। ये केवल मात्र सुझाव नहीं है, जब ये सुझाव रिपोर्ट का हिस्सा बनकर संसद के सामने आयेंगे, तब किसी पार्टी की या सांसद की हिम्मत नहीं होगी कि इनके विरोध में एक भी स्वर उठा पाये। ये सुझाव संविधान में संशोधन का रूप लेंगे एवं संविधान का स्थाई हिस्सा बन जायेंगे, जिन्हें हमारी सुप्रीम कोर्ट भी मान्यता देने में बाध्य हो जायेगी। जिन सुझावों का प्रतिकूल असर पड़ने वाला है, उनमें से कुछ इस प्रकार है संविधान के अनुच्छेद 15 (4) एवं 16 (4) के प्रावधान जो अभी मात्र सामर्थ्यकारी है, उन्हें आज्ञायक बना दिया जाये अर्थात् अनु. जाति एवं जनजाति के लिये पदों के आरक्षण के लिये प्रशासनिक दक्षता भी आवश्यक नहीं रहे। संविधान में समानता के अधिकार को सुरक्षित करने वाले अनुच्छेद 14 में नया खंड 14 (2) जोड़कर राज्य केन्द्र एवं राज्यों को यह सक्षमता प्राप्त हो जाये कि वह किसी भी व्यक्ति समूह, समुदाय समूह के लिये समानता का लक्ष्य दिखाकर उनके लिये कोई भी प्रावधान बना सके एवं उनके लिये कोई भी नीति या उपाय अमल में ला सके। ऐसा अधिकार तो सरकारों को पूर्णतः निरंकुश बना देने वाला है एवं पक्षपात का पूरा रास्ता खोल देगा और अदालतें कुछ भी नहीं कर सकेंगी। उच्च न्यायालय अर्थात् सभी हाईकोर्ट्स में एवं सुप्रीम कोर्ट में अनु.जा. एवं अनु. ज.जाति के जजों की नियुक्ति सुनिश्चित कर दी जाये अर्थात् इन अदालतों में भी इन समुदायों को आरक्षण, इनके लिये कोटा व्यवस्था की जावे। इन अदालतों में न्यायाधीशों का विभिन्न जाति एवं समुदायों के आधार पर बँटवारा किया जावे। इसके अलावा वर्तमान संविधान समीक्षा आयोग के समक्ष विचाराधीन और भी सुझाव है। आरक्षण मुक्ति मोर्चा यात्रा की अगुवाई कर रहे हैं जस्टिस सौभाग्यमल जैन (दिल्ली), लक्ष्मण तिवारी, प्रमुख यात्रा संयोजक श्री बसंत कुमार बांगण, अध्यक्ष माहेश्वरी सभा, श्री अनिल जैन, मांगीराम शर्मा, राष्ट्रीय अध्यक्ष अ.भा. ब्राह्मण महासभा, नरेन्द्र सिंह राजावत, राजकुमार जैन आदि हैं।

(दैनिक भास्कर, जबलपुर, 10 सितम्बर 2001 से साभार)

जातिगत आरक्षण समानता के अधिकार का हनन

जातिगत आरक्षण समानता के अधिकार का हनन है। राजनीतिक लाभ हेतु अस्त्र के रूप में उपयोग में लाई जा रही यह प्रणाली सामाजिक बुराईयों को जन्म दे रही है। प्रतिभायें निराशाजनक दौर से गुजर रही हैं और व्यवस्था का स्वरूप कमजोर हो रहा है। बेहतर यह है कि जाति विशेष को सेवा, मदद या अन्य मामलों में खुला आरक्षण देने की बजाय उन्हें अच्छी शिक्षा देकर और योग्य बनाने के प्रयास किये जायें।

ये विचार आरक्षण समाप्ति अभियान से जुड़े श्री एच.एस. श्रीवास्तव ने यहाँ एक संवाददाता सम्मेलन में व्यक्त किये।

श्री श्रीवास्तव ने कहा कि संविधान निर्माताओं ने आरक्षण को अल्पसमय के लिये अनुमति दी थी, लेकिन राजनैतिक स्वार्थों के चलते इसे 2010 तक बढ़ा दिया गया है।

संविधान समीक्षा आयोग के प्रस्तावित सुधारों के आधार पर अब तो इसे मूल अधिकार बनाया जा रहा है। इसके तहत आरक्षण सीमा को अदालतों में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इससे सामान्य श्रेणी में आने वाली समाज की भावी पीढ़ी का भविष्य अंधकार में घिर जायेगा, योग्यता के बावजूद वे वाजिब हक से वंचित रह जायेंगे।

उन्होंने कहा कि एक ओर सरकार वर्णभेद को सामाजिक बुराई मानती है, वहीं आरक्षण प्रक्रिया के द्वारा समाज में स्वयं दीवारें बनाई जा रही हैं, इससे एकता और अखण्डता को खतरा पैदा हो सकता है। हीन-भावना से ग्रसित होकर सामान्य वर्ग की प्रतिभायें उग्र स्वरूप भी धारण कर सकती है, आरक्षण का सामाजिक विरोध जरूरी है। समाजसेवी बद्रीप्रसाद अग्रवाल ने कहा कि आरक्षण के बल पर आज अपात्र लोग भी उच्च पदों पर बैठे हैं, इससे व्यवस्था पर बुरा असर पड़ा है। बेहतर यह है कि आरक्षण देने की बजाए सरकार व्यवस्था को सुधारें।

आरक्षित वर्ग के लिये सस्ती, सुलभ और बेहतर शिक्षा उपलब्ध करायें ताकि वे सक्षम होकर व्यवस्था को गति देने में मदद करें। इसका जो वर्तमान स्वरूप है वह राजनीति से प्रेरित व दुराभाव से भरा हुआ है।

उन्होंने बताया कि नई दिल्ली के संयुक्त संस्था मंच ने आरक्षण अभियान की शुरूआत की है। इसके अंतर्गत जनजागरूकता हेतु आरक्षण मुक्ति यात्रा निकाली जा रही है, इसका नगर आगमन 10 सितम्बर को हो रहा है, तिलवारा पुल पर इसका अपरान्ह 2.00 बजे भव्य स्वागत किया जायेगा।

शोभायात्रा का नेतृत्व जस्टिस सौभाग्यमल जैन, माँगीराम शर्मा, लक्ष्मण तिवारी समेत अन्य विद्वतजन कर रहे हैं। वरिष्ठ पत्रकार भगवतीधर वाजपेयी ने आरक्षण को बुराई निरूपित करते हुए इसके न्यायसंगत विरोध में एक साथ उठ खड़े होने का आव्हान किया है।

(नवभारत, जबलपुर 9 सितम्बर 2001 से साभार)

टीकमगढ़ जैन समाज का ऐतिहासिक निर्णय

कुरीतियाँ समाज के वास्तविक स्वरूप को समाप्त करती हैं। धर्म और संस्कृति की पहचान को धूमिल करती हैं। जैन समाज भी कुरीतियों के मकड़जाल में अपनी पहचान खोता जा रहा है। रात्रिकालीन शादियाँ और रात्रिकालीन सामूहिक भोज के आयोजन से जैन समाज जैनत्व की पहिचान खोता जा रहा है। इसलिए गाजर घास की तरह उगी कुरीतियों पर कुठाराघात होना चाहिए। यह विचार परमपूज्य आचार्य शिरोमणि 108 विद्यासागर जी महाराज के परम प्रभावक शिष्य मुनिश्री 108 समतासागर जी, 108 प्रमाणसागर जी एवं ऐलक श्री 105 निश्चयसागर जी महाराज ने धर्म सभा को सम्बोधित करते हुए अभिव्यक्त किये।

डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी ट्रस्ट द्वारा अहिंसा वर्ष पर ट्राइसिकिल एवं वैशाखियाँ प्रदत्त

छतरपुर। इस वर्ष भगवान महावीर की 2600 वीं जयंती विविध आयोजनों के साथ अहिंसा वर्ष के रूप में मनाए जाने के तारतम्य में डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी चेरीटेबल ट्रस्ट, छतरपुर (म.प्र.) ने अध्ययनरत निर्धन विकलांग बच्चों को ट्राइसिकिल तथा वैशाखियाँ प्रदान कीं और उनके उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना की। प्रगतिशील विकलांग संसार, छतरपुर के तत्त्वावधान में निराश्रित व्यक्तियों को सायंकालीन निःशुल्क भोजन कराने की योजना का भी शुभारंभ हुआ।

राकेश बड़कुल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पत्र, धन्यवाद, सुझाव शिरोधार्य

आपके द्वारा प्रेषित 'जिनभाषित' अंक निरन्तर प्राप्त हो रहे हैं। पत्रिका अपनी गरिमा के अनुरूप अच्छी प्रकाशित हो रही हैं। लेखों का चयन स्तरीय है। आप इसके स्तर को समुन्नत बनाये रखने के लिये निरन्तर सचेष्ट रहते हैं। दिगम्बर जैन समाज में स्तरीय पत्रिकाएँ इनी-गिनी ही हैं, इनमें मैं आपकी पत्रिका की भी गणना करता हूँ। पत्रिका अधिकाधिक लोगों तक पहुँचे, ऐसी मेरी शुभकामनाएँ हैं। श्रुतपञ्चमी तथा आचार्य गुरूवर श्री विद्यासागर जी महाराज पर आपने अच्छी सामग्री दी है।

डॉ. रमेश चन्द्र जैन
अध्यक्ष- अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद्,
जैन मंदिर के पास, बिजनौर (उ.प्र.)

सुन्दर पत्रिका 'जिनभाषित' के दो अंक प्राप्त हुए। दोनों अंकों में एक-से-एक सुन्दर लेख/शोधलेख पढ़कर अत्यंत आनन्द हुआ।

'महावीर प्रणीत जीवन-पद्धति की प्रासंगिकता' कैसे मनाएँ- भ. महावीर का 2600वाँ जन्म क.महो. आदि सभी लेख उद्बोधक हैं। नाम लें, तो सभी की चर्चा करनी होगी। आपकी पत्रिका लीक से हटकर है। सामयिक विचार है। सभी विद्याओं से भरपूर हैं।

द्वितीय अंक में कुमार अनेकान्त का लेख आँख खोलने वाला है।

कुल मिलाकर दोनों अंक बहुत सुन्दर, पठनीय व समय के साथ चलने वाले हैं।

डॉ. कुसुम पटोरिया,
आजाद चौक, सदर नागपुर (महा.)

'जिनभाषित' की प्रतियाँ प्राप्त होती रहती हैं, संभवतः इधर डाक व्यवस्था की गडबड़ी के कारण नवीनतम अंक प्राप्त नहीं हो सका। जिनभाषित का हर अंक अपने आप में अनूठा, आकर्षक और आध्यात्मिक सामग्री से भरा होता है, जिसे खोलने के बाद मैं अन्तिम पृष्ठ तक पढ़ने के बाद ही इसे बन्द करता हूँ। यह पत्रिका धर्म में आई कुरीतियों को दूर करने के साथ-साथ सामाजिक अन्धविश्वासों को भी समाप्त कर पायेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरा अपना एक सुझाव यह भी होगा कि आप इसके हर अंक में कम से कम एक लेख जैन इतिहास एवं पुरातत्त्व से अवश्य दें, ताकि पत्रिका जैन इतिहास एवं संस्कृति पर शोधकर्त्ताओं के लिये भी अधिक से अधिक उपयोगी हो सके। 'जिनभाषित' की सफलता और उज्ज्वल भविष्य के लिये मेरी सारी शुभकामनाएँ।

डॉ. विनोद कुमार तिवारी
रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग यू.आर. कालेज, रोसड़ा (समस्तीपुर) बिहार

'जिनभाषित' का जून 2001 का अंक प्राप्त हुआ। मुखपृष्ठ पर ही परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का चित्र देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आचार्य श्री के दैगम्बरी दीक्षा दिवस के अवसर पर अच्छी सामग्री प्रकाशित की गई है। आपके सम्पादकीय की ये पंक्तियाँ- 'आचार्यश्री चामत्कारिक प्रयोगों में रुचि नहीं रखते' जहाँ कतिपय आधुनिक जैन साधुओं में मन्त्र-तन्त्र के द्वारा मनोकामनाएँ पूर्ण करने का प्रलोभन देकर भीड़ जोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, वहाँ आचार्यश्री इसे मुनिधर्म के सर्वथा विरुद्ध बतलाते हैं और इसका सख्ती से निषेध करते हैं, हृदय को छू गई। इन क्रियाकलापों का विरोध होना ही चाहिए। पूज्य मुनिश्री समतासागर महाराज, मुनिश्री अजितसागर महाराज, मुनिश्री क्षमासागर महाराज के लेख भी मननीय हैं। संयम, तप, अपरिग्रह का मनोविज्ञान भी पठनीय है। पं. रतनचन्द्र बैनाड़ा द्वारा प्रस्तुत 'शंका-समाधान' एक अच्छा प्रयास है। सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें सामग्री धर्म और दर्शन पर आधारित है। यह धर्म प्रचार का साधन बने, यही अपेक्षा है।

डॉ. नरेन्द्र जैन 'भारती'
वरिष्ठ सम्पादक- 'पार्श्व ज्योति' सनावद (म.प्र.)

वर्तमान युग के अनुरूप 'जिनभाषित' मासिक पत्रिका का जून माह का अंक प्राप्त कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। इस पत्रिका के माध्यम से समाज में विलुप्त जैन धर्म शिक्षण का कार्य पुनः गति प्राप्त करे, सर्वोदय भाग्योदय जीवोदय के साथ ज्ञानोदय का उदय हो, इसकी महती आवश्यकता है। आज वर्णीजी जैसे महान् व्यक्तित्व की बहुत आवश्यकता है।

पूज्य वर्णीजी द्वारा स्थापित जैन विद्यालय, जैन पाठशालाएँ विलुप्त हो गई हैं। पुनः इस पत्रिका के माध्यम से जैन धर्म-शिक्षण की आवश्यकता की आवाज बुलन्द कीजिए। साधु-सन्तों का ध्यान इस ओर आकर्षित कीजिए।

पं. हुकमचन्द जैन
डोंगरगाँव (राजनांदगांव)-491661

'जिनभाषित' का जून 2001 अंक पढ़ा। वास्तव में यह पत्रिका अद्वितीय है। सम्पूर्ण जानकारी सारगर्भित, आत्मप्रेरक एवं सकारात्मक लगी। 'शाबाश गुजरात' शीर्ष-अंतर्गत विशेष समाचार हृदय को छू गया। 'श्रमण परम्परा के ज्योतिर्मय महाश्रमण आचार्य श्री विद्यासागर' लेख अनुपम एवं हम श्रावकों के लिये प्रेरणादायक है। सौभाग्य है, हमारा जो यह पत्रिका हमें पढ़ने मिली, हर किसी ने पत्रिका को बड़ी श्रद्धा और रूचि के साथ पढ़ा। सधन्यवाद, शुभकामना सहित सादर।

प्रमोद कुमार जैन
10/2, अंजलि कॉम्प्लेक्स, जैन मंदिर के पास, टी.टी. नगर, भोपाल (म.प्र.)

जिनभाषित का अंक जून 2001 प्राप्त हुआ। इसमें पृष्ठ 26 पर मूलचन्द जी लुहाड़िया द्वारा प्रेषित समाचार पढ़कर कि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेर ने कवि सुन्दरदास जी का आपत्तिजनक पद्य पाठ्य-क्रम से निष्कासित कर दिया है, बहुत प्रसन्नता का अनुभव हुआ। इस आन्दोलन का शीघ्र ही इतना सुखद परिणाम आयेगा यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैंने उस समय भी नहीं सोचा था जब मैंने इस आपत्तिजनक पाठ की सूचना सर्वप्रथम अर्हत्वचन के सम्पादक डॉ. अनुपम जैन को दी थी। उस समय उन्होंने इसे महत्त्व देकर सम्पादकीय में इस समस्या को लिखा। तत्काल ही जैन सोशल ग्रुप, इंदौर ने इसे आड़े हाथों लिया और बड़े- बड़े पैम्पलैट छपवाकर बाँटे और मेरे पास भी भेजे। मैं अजमेर- किशनगढ़ जैन समाज तथा उन महानुभावों को हृदय से धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने इसे गंभीरता से लेकर श्रमपूर्वक इसे हटवा दिया।

इन सफलताओं को देखकर मैं एक सन्देश समाज को देना चाहता हूँ कि समस्या चाहे जितनी बड़ी हो उसके समाधान में आप अगर एक कदम भी आगे बढ़ाते हैं तो देर-सबेर उसके सार्थक परिणाम भी सामने आते ही हैं। मैंने प्राकृत भाषा नेट जे.आर.एफ. परीक्षा से हटा देने पर एक छोटी सी आवाज उठायी, बात ऊपर तक पहुँची, आचार्य विद्यानन्दजी की कृपा से प्राकृत भाषा पुनः स्थापित हुई। असंभव सा दिखने वाला कार्य संभव हो गया। इसलिये हममें से कोई भी ऐसी खामियाँ कहीं पर भी देखे, उसे सामने लाये। आज जैन समाज जाग्रत है। परिवर्तन भी होता है। इन उदाहरणों से तो कम से कम ऐसा ही लगता है।

कुमार अनेकान्त जैन

'जिनभाषित' मासिक पत्रिका का जून 2001 का अंक मिला। बड़ी प्रसन्नता हुई। यह अंक अपने आप में भविष्य निधि बनने का संकेत देता है। युगस्रष्टा महर्षि की दिगम्बरी दीक्षा का दिवस जैन धर्मावलम्बियों को तीर्थङ्करों का स्मरण कराता है। आचार्य विद्यासागर जी महाराज युगपुरुष हैं। ऐसे महापुरुष जन कल्याण के लिये समय-समय पर प्रादुर्भूत होते हैं और तुलसीदास जी के शब्दों में हम कह सकते हैं 'ऐसो उदार को जगमाँहीं' - जो अपना जीवन जन-कल्याण में लगावें और स्वयं साधना कर तीर्थ बनकर दूसरों को भी भवसागर को पार करने का मार्ग दिखावें। पत्रिका अपने बाह्य और अन्तर कलेवर दोनों में ही सम्पादक एवं प्रकाशक की कलापूर्ण दृष्टि की परिचायक है। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि धर्म के प्रति जागृति का यह प्रयास सफल सिद्ध होगा।

डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल
6/240, बेलनगंज, आगरा-4

In Jinabhashita, the valuable articles are very important and make awarness amongst the people to our religion.

D.N. Akki
National Awardee Drawing teacher
Govt. P.U. College, Gogi-585309,
Tq. Shahapur, Dist. Gulbarga (K.S.)

'जिनभाषित' पत्र के तीन अंक उपलब्ध होने के उपरान्त कल चौथा अंक भी पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के भव्य चित्र सहित प्राप्त हुआ, देखकर तथा पढ़कर प्रसन्नता हुई।

सामाजिक पत्र तो कई प्रकाशित होते हैं, किन्तु 'जिनभाषित' की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो अन्य पत्रों में सहसा उपलब्ध नहीं होतीं, जैसे इस पत्र में 'उर्दू शायरी में अध्यात्म' 'बुद्धि चातुर्य की कथाएँ' 'शंका समाधान' आदि ऐसे प्रकरण है जो जन साधारण को सहसा पढ़ने को प्रोत्साहित करते हैं। इनका संग्रह भविष्य के लिये भी वर्तमान की तरह जनसाधारण को ज्ञानवर्धन में सहायक होगा। पत्रिका उत्तरोत्तर समुन्नति और सार्वभौमिक प्रतिष्ठा प्राप्त करे, यह मेरी मंगलकामना है।

पं. बच्चूलाल जैन शास्त्री 'कंचन कुटीर'
मकान नं. 36, चरारी, लाल बंगला,
कानपुर (कैण्ट)

आपके द्वारा सम्पादित पत्रिका 'जिनभाषित' मुझे बराबर प्राप्त हो रही है। पत्रिका का आकर्षक सचित्र आवरण पृष्ठ मन को मोहनीय है। इसकी साज सज्जा भी पत्रिका के अनुकूल है। इसके साथ ही इसका निर्दोष, स्वच्छ, सुन्दर मुद्रण पत्रिका के सौंदर्य में वृद्धि कर रहा है। चूँकि पत्रिका के संपादक मंडल में माने हुए विद्वान हैं, सामग्री स्तरीय एवं पठनीय है। मेरी मान्यता है कि आपके व सम्पादक मंडल के ज्ञान का लाभ इस पत्रिका के माध्यम से पाठकों को उपलब्ध होता रहेगा।

आपके द्वारा प्रस्तुत लेखों का चयन भी सराहनीय है। आपकी यह पत्रिका प्रगति के पथ पर अग्रसर होती रहे, इसी शुभकामना के साथ,

माणिकचंद जैन पाटनी
महामंत्री,
राष्ट्रीय दिगम्बर जैन महासमिति

आपके द्वारा संपादित जिनभाषित- युगसृष्टा महर्षि का दैगम्बरी दीक्षा दिवस संबंधी मासिक पत्रिका का वर्ष 1 का प्रथम अंक प्राप्त हुआ। अंक का गैटप तथा सामग्री संकलन देखकर हृदय प्रफुल्लित हुआ। आचार्य श्री विद्यासागर जी महान् विचारक, आगम पाठी, उत्कृष्ट तपस्वी, सागर से गंभीर और परम शान्त मुद्राधारी संत हैं।

मैंने आचार्य श्री के सर्वप्रथम दर्शन किशनगढ़ में दीक्षा पूर्व किये थे। राजकुमार जैसा तेजस्वी चेहरा था। आचार्य ज्ञानसागर जी, पू.पं. चैनसुखदासजी न्याय तीर्थ के सहपाठी थे। मुझे भी पं. चैनसुखदास जी का प्रमुख शिष्य होने का गौरव प्राप्त है।

अनूप चन्द्र न्यायतीर्थ
769, गोदिकों का रास्ता, किशनपोल बाजार,
जयपुर-302003

माटी नहीं बनते तुम

आचार्य श्री विद्यासागर

अरे कंकरो!
माटी से मिलन तो हुआ
पर
माटी में मिले नहीं तुम!
माटी से छुवन तो हुआ
पर
माटी में घुले नहीं तुम!
इतना ही नहीं
चलती चक्की में डालकर
तुम्हें पीसने पर भी
अपने गुणधर्म
भूलते नहीं तुम!
भले ही
चूरण बनते रेतिल
माटी नहीं बनते तुम!

मूकमाटी से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाणी आदमी की पहचान

यशपाल जैन

एक बार एक राजा अपने मंत्री और सेवक के साथ वन-विहार को गया। बड़ा हरा-भरा रमणीक वन था। सघन वृक्षों के बीच जलाशय थे। पशु निर्भय होकर विचरण कर रहे थे। राजा वहाँ की दृश्यावली को देखकर मुग्ध रह गया। तभी उसे थोड़ी दूर पर एक हिरण दिखाई दिया। राजा ने अपना घोड़ा उस ओर बढ़ा दिया। हिरण ने यह देखा तो उसने चौकड़ी भरी। उसका पीछा करने के लिये राजा ने अपने घोड़े को एड़ लगाई। दौड़ते-दौड़ते राजा बहुत दूर निकल गया। उसे थकान हो गई और वह उस स्थान की ओर बढ़ा, जहाँ अपने मंत्री और सेवक को छोड़ आया था।

उधार राजा बहुत देर तक नहीं लौटे तो मंत्री ने सेवक से कहा कि जाओ, राजा को खोजकर लाओ।

सेवक चल दिया। थोड़ी दूर पर एक अंधे साधु अपनी कुटिया के बाहर बैठे थे। सेवक ने कहा, 'ओरे अंधे, इधर से कोई घुड़सवार तो नहीं गया?' साधु बोले, 'मुझे पता नहीं।'

जब काफी देर तक सेवक नहीं लौटा तो मंत्री को चिन्ता हुई और वह राजा की खोज में निकल पड़ा। संयोग से वह उसी साधु की कुटिया पर आया और उसने पूछा 'ओ साधु, क्या इधर से कोई गया है?' साधु ने उत्तर दिया, 'हाँ, मंत्रीजी, अभी यहाँ होकर एक नौकर गया है।' मंत्री आगे बढ़ गया।

कुछ ही क्षण बाद स्वयं राजा वहाँ आया। उसने कहा, 'ओ साधु महाराज, इधर से कोई आदमी तो नहीं गये?' साधु ने कहा, 'राजन् पहले तो इधर से आपका नौकर गया, फिर आपका मंत्री गया और अब आप पधारे हैं।'

इसके पश्चात् जब तीनों मिले तो उन्होंने उस साधु की चर्चा की। सबको आश्चर्य हुआ कि नेत्रहीन होते हुए भी साधु ने उन्हें कैसे पहचान लिया! वे साधु के पास गये और अपनी शंका उनके सम्मुख रखी।

साधु ने मुस्कराकर कहा, 'आप सबको पहचानना बड़ा आसान था। आपके नौकर ने कहा, 'ओरे अंधे', मंत्री ने कहा, 'ओ साधु' और आपने कहा, 'ओ साधु महाराज'। राजन्! आदमी की शक्ल-सूरत से नहीं, बातचीत से उसके वास्तविक रूप का पता चलता है। आपके संबोधनों से आपको पहचानने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई।'

लाख रुपये की बात

शेख सादी के नाम से अधिकांश लोग परिचित हैं। उनकी कहानियाँ आज भी बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं और जीवन में उनसे शिक्षा मिलती है।

शेख सादी के बचपन की एक घटना है। वह अपने पिता के साथ मक्का जा रहे थे। जिस दल में वह शामिल थे, उसका नियम था कि आधी रात को उठकर वे लोग प्रार्थना किया करते थे।

एक दिन रात को शेख सादी और उनके पिता उठे। उन्होंने प्रार्थना की, लेकिन कुछ लोग अब भी सो रहे थे। यह देखकर शेख सादी को बहुत बुरा लगा। उन्होंने अपने पिता से कहा, 'देखिये तो, ये लोग कितने काहिल हैं। प्रार्थना के समय किस तरह सोये पड़े हैं।'

पिता ने लड़के की बात सुनकर उसकी ओर घूरकर देखा, फिर कहा, 'सादी, तू न जागता तो अच्छा होता। उठकर दूसरों की निन्दा करने से न उठना कहीं अच्छा है!'

पिता की बात सुनकर शेख सादी बहुत लज्जित हुए और उस दिन के बाद उन्होंने कभी किसी की बुराई नहीं की।

आचार्य श्री विद्यासागर के सुभाषित

- जहाँ पर तेरा-मेरा, यह-वह, सब विराम पा जाता है वस्तुतः वही अध्यात्म है।
- लेखक, वक्ता और कवि होना दुर्लभ नहीं है, दुर्लभ तो है आत्मानुभवी होना।
- सोचिये! स्वयं को छाने बगैर सारे संसार को छानने का प्रयास आखिरकार तुम्हारे लिये क्या देगा?
- मैं यथाकार बनना चाहता हूँ व्यथाकार नहीं, और मैं तथाकार बनना चाहता हूँ कथाकार नहीं।

'सागर बूँद समाय' से उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान ऋषभदेव ग्रंथमाला

सांगानेर वाले बाबा श्री आदिनाथजी

हमारे यहां पर स्वयं के प्रकाशन के अतिरिक्त उपलब्धअन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

- वीर विद्या प्रकाशन, अहमदाबाद
- ज्ञानचन्द्रिका ग्रंथमाला, इन्दौर
- दि. जैन त्रिलोक शोथ संस्थान हस्तिनापुर
- गजेन्द्र पब्लिकेशन, दिल्ली
- जैन पुस्तक भवन, कलकत्ता
- भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
- पीयूष भारती प्रकाशन जबलपुर
- पी. एस. जैन प्रकाशन
- गणेशवर्णी दि. जैन संस्थान
- परमश्रुत प्रभावक मण्डल रामचन्द्र आश्रम आगास
- अहमदाबाद प्रकाशन
- नसीराबाद प्रकाशन
- जैन साहित्य सदन दिल्ली
- वीर पुस्तक भण्डार जयपुर प्रकाशन
- भारतीय दि. जैन संघ मथुरा प्रकाशन
- श्री दि. जैन पुस्तकालय सूरत प्रकाशन
- सहजानन्द शास्त्रमाला, मेरठ प्रकाशन
- श्री शान्तिवीर नगर श्रीमहावीरजी प्रकाशन
- दि. जैन कुन्थुविजय ग्रंथमाला, जयपुर
- जबलपुर प्रकाशन

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी सांगानेर के शिखरों का विहंगम दृश्य

पूरें भारतवर्ष के सभी जैन प्रकाशकों के ग्रंथों के विक्रय की व्यवस्था करके पाठकों के सुविधार्थ यहां सकल जैन साहित्य उपलब्ध है। अतः आप अपनी संस्थाओं मन्दिरजी के पुस्तकालय हेतु एवं स्वपठनार्थ दिगम्बर जैन साहित्य को सशुल्क हमारे निम्नलिखित पते से सहजता से प्राप्त कर सकते हैं। इस ग्रंथमाला में अभी तक लगभग 125 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं तथा भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संस्थाओं से प्रकाशित 600 प्रकार के ग्रंथ विक्रय केन्द्रों पर उपलब्ध हैं। अनेक ग्रंथ विभिन्न संस्थाओं से पुरस्कृत भी हो चुके है।

प्रकाशक

भगवान ऋषभदेव ग्रंथमाला

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी सांगानेर, जयपुर

फोन : 730390, 731952, 732739 फैक्स : 0141-565634

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-I, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा - 282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org